डॉ. श्रीनारायण समीर

अनुवाद : कुछ पुनर्विचार*

अनुवाद अपने स्वरूप और परिप्रेक्ष्य में एक आधुनिक अवधारणा है। अन्य भाषा-भाषी दुनिया और उसकी ज्ञानात्मक उपलब्धियों को जानना तथा उन्हें फिर से अपनी भाषा में रूपांतरित करना अनुवाद का स्वभाव होता है। परंतु हमें यह भी ध्यान में रखकर चलना होगा कि अनुवाद रचना का शब्दशः रूपांतरण नहीं है। अनुवाद मूल का लक्ष्य भाषा में पुनर्जीवन होता है; रूपांतरण के जरिए मूल का पुनः प्रकटीकरण होता है। अनुवाद के माध्यम से मूल रचना दूसरी भाषा में परवर्ती जीवन पाकर अनश्वर बनती है। अतः मेरे विचार में अनुवाद रचना का अनश्वर उद्यम है। वाल्टर बेंजामिन ने भी माना है कि अनुवाद स्रोत भाषा की रचना को लक्ष्य भाषा में जीवन प्रदान करता है। अस्तु अनुवाद मूल रचना का उत्तरजीवन होता है।

सभ्यता के तकाजे के परिणाम-रूप में भाषाओं में संवाद का सिलसिला शुरू हआ। यही भाषा-संवाद आगे चलकर अनुवाद कहलाया। इसलिए अनुवाद को भाषा सेतु भी कहा जाता है।

किसी भाषिक पाठ का दूसरी भाषा में पुनर्भाव होने के कारण अनुवाद अपने आप में कलात्मक होता है। मूल भाषा पाठ के जैसा ही पाठ दूसरी भाषा में सृजित करने में ही उसकी कला निहित होती है। यह शिल्प और शैली से जुड़ा हुआ मामला है, जो मूल पाठ और अनूदित पाठ को अर्थ के साथ-साथ प्रभाव में भी समतुल्य होने की चाह लिए होता है।

अनुवाद अपने स्वभाव तथा संरचना के मामले में बड़ी विस्मयकारी सच्चाई है। यह एक ही साथ आधुनिक और पारंपरिक दोनों होता है। तत्वतः आधुनिक और मूलतः

* भारतीय अनुवाद परिषद के दिनांक 17 नवंबर, 2011 को संपन्न हुए दीक्षांत समारोह के अवसर पर विशिष्ट अतिथि के रूप में दिया गया वक्तव्य।

पारंपरिक। अनुवाद अपने अभिप्राय और उद्देश्य में जहाँ आधुनिक होता है, संरचना में बिलकुल पारंपरिक। विभिन्न ज्ञानानुशासनों, समुदायों एवं सभ्यताओं के बीच संवाद जोड़ने का उद्देश्य बड़ा साफ होता है। पारस्परिकता और प्रतिस्पर्धा वाली इस दुनिया में प्रगति और विकास के साथ कदमताल बैठाने के लिए यह दो भाषाओं के संवाद के साथ आकार पाता है। इसलिए इसका सरोकार बिलकुल आधुनिक है। परंतु दो भाषाओं की परिधि में संपन्न होने, एक भाषा पाठ को दूसरी भाषा पाठ के रूप में साकार करने के कारण संरचना में यह पारंपरिक है।

अनुवाद बुनियादी तौर पर हमारी सभ्यता के आदिम पेशों में से एक है और अनुवादक आदिम पेशेवर। अनुवाद के आदिम और अनगढ़ रूप से आधुनिक स्वरूप तक की विकासयात्रा वस्तुतः अनुवाद के स्वभाव में निहित नवोन्मेष तथा सृजनशीलता का परिचायक होती है। इसी स्वभाव के बल पर अनुवाद आज न केवल भाषाओं के बीच संवाद का माध्यम बना है, बल्कि दो भिन्न समुदायों, राष्ट्रीयताओं और देशों को समझने और उनके मत-मतांतरों को जानने का जरूरी औजार भी बन गया है।

दरअसल अनुवाद अपनी अंतर्भाषिक संवाद-शक्ति से विवाद की परतों में जाने तथा उसे समझने का अवसर सुलभ कराता है। इससे किसी विवाद के समाधान की राह तलाशने में सभ्य समाज को मदद मिलती है। इसका महत्त रूप देशों और दूरियों में फैली भाषाई विविधता को पाटने और उनमें संवाद का सिलसिला शुरू करने में देखा जा सकता है। संवाद की अंतर्भाषिकता एक आधुनिक प्रतीति है। इसका सरोकार ज्ञान का प्रसार करने से जुड़ा होता है। इसलिए अनुवाद को अक्सर सृजन का पुनर्सृजन कहा जाता है। सृजनात्मकता अनुवाद की सफलता की शुरू से कुंजी रही है। अनुवाद की सफलता पहले भी इस बात से नहीं आँकी जाती थी कि वह कितना मूलवत् है। अच्छा और सफल अनुवाद सदैव पाठ-भाषा के कलेवर से प्रस्थान होता है। उसका यह प्रस्थान मूल से निश्चित रूप से परिवर्तित और परिवर्द्धित होता है।

उत्तर आधुनिकता ने अनुवाद के मूल में परिवर्तन तथा परिवर्द्धन की पारंपरिक धीमी प्रक्रिया को अचानक तेज कर दिया है। भाषा संरचना के लिए यह एक नया प्रस्थान है। इससे अनुवाद के चाल और चरित्र, दोनों में बदलाव आया है। अनुवाद के नाम पर अब रूढ़ भाषांतरण कोई नहीं चाहता। मूल लेखक जैसे प्रवाह और प्रभाव की माँग अब अनुवाद में भी की जाने लगी है। और ऐसे अनुवाद अब होने भी लगे हैं। वैसे साहित्यिक अनुवाद शुरू से ही इसी प्रकार के होते रहे हैं। विज्ञापन के अनुवाद में मूल से बेहतर रचने पर सदैव बल दिया जाता रहा है। अब ज्ञान-विज्ञान के विभिन्न अनुशासनों से जुड़े लेखन के अनुवाद में भी सृजनशीलता पर जोर दिया जाने लगा है।

आज के सूचना-विस्फोट के दौर में भी अनुवाद सभ्यताओं के बीच आपसदारी कायम करने का जरूरी जरिया है। इन्हीं गुणों के चलते अनुवाद आज सभी के लिए, सभी भाषा-भाषियों के लिए तथा ज्ञान-विज्ञान के सभी अनुशासनों के लिए अपरिहार्य हो गया है। वैसे भी ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में नित-नूतन जो नए-नए अनुसंधान हो रहे हैं, उनसे परिचित होने के लिए अनुवाद हमारी जरूरत है। इसके बिना अद्यतन बने रहना नामुमकिन है। परंतु अनुवाद को लेकर हमारे यहाँ का हाल बड़ा दिलचस्प है। यह मानने में कोई गुरेज नहीं होना चाहिए कि हमारी व्यवस्था हमारी जुबान नहीं जानती। वह परदेसी जुबान जानती है, क्योंकि उसी जुबान में उसकी नींव और बुनियाद है। ऐसी व्यवस्था में रहने और काम करने के लिए अनुवाद जरूरी हो जाता है। लेकिन जब हम अनुवाद करना शुरू करते हैं तो हम जो चाहते हैं, अर्थात् हमारी जो आकांक्षा होती है और जो वास्तविकता होती है, इन दोनों के बीच दूरी बनी रहती है। इसी आकांक्षा और वास्तविकता की दूरी अनुवाद को मूल से दूर ले जाती है। फलतः अनुवाद कृत्रिम और विवादास्पद हो जाता है।

लेकिन अनुवाद बस इतना ही नहीं है। अनुवाद सृजन है। किसी भाषा-सृजन का दूसरी भाषा में पुनर्सृजन। सृजन अगर कृत्रिम लगने लगे तो यह उसकी कमी कदापि नहीं होती। कमी स्रष्टा की होती है। भाषा-सर्जना में किसी किस्म की कमी का एक कारण भाषा के उपादानों की कमी भी हो सकती है।

जाहिर है कि अनुवाद भाषा में होता है। इसलिए अनुवाद को भाषा-कर्म भी कहा जाता है। तो सवाल खड़ा होता है कि अनुवाद की भाषा ज्ञानानुशासन के समान रहे या आम बोलचाल में ढले? यानी भाषा को जनता के पास ले जाया जाए या जनता भाषा के पास जाए अथवा भाषा को जनता की जरूरतों के मुताबिक विकसित किया जाए? आमतौर पर अनुवाद कार्यों की अलोकप्रियता को देखते हुए तो यही लगता है कि जनता पर यह जिम्मेदारी डाल दी गई है कि वह भाषा के अनुरूप अपने को ढाले, विकसित करे। भारतीय अनुवाद परिषद जैसी महत्त्वपूर्ण संस्थाओं, विश्वविद्यालयों आदि से दीक्षित अनुवादक निश्चय ही अनुवादजनित इस चुनौती से बच नहीं सकते। आज अनुवाद को बोझ या ड्यूटी समझने की जरूरत नहीं है; इसे शौक बनाने का प्रयास करना जरूरी है ताकि इस महत्ती कार्य को भली प्रकार से संपन्न करने में आनंद की अनुभूति हो।

❑

प्रो. सत्यदेव मिश्र

अनुवाद की अंतहीन यात्रा : अनेक पड़ाव, अनेक प्रश्न

राजभाषा हिंदी आज अपनी अस्मिता की रक्षा हेतु संघर्षशील है। अंग्रेजी से उसकी इतनी गहरी प्रतिद्वंद्विता पहले कभी न थी। ज्ञान-विज्ञान के लगभग छह सौ अनुशासनों का माध्यम बनी और पच्चीस-छब्बीस लाख पारिभाषिक शब्दों के विशाल भंडार को अपने क्रोड़ में समेटे हुए अंग्रेजी आज विश्व की शीर्षस्थ भाषा है। इस गौरवशाली मूर्धन्य 'स्टेचर' को प्राप्त करने वाली कोई अन्य भाषा कभी विश्व में रही हो, ऐसा कोई संकेत भाषाओं के इतिहास में नहीं मिलता। वर्तमान शती में अंग्रेजी के इस अभूतपूर्व उत्कर्ष के प्रमुख कारक हैं – ज्ञान-विज्ञान के नाना संदर्भों में सुनिश्चित प्रयोग और अंतर्राष्ट्रीय मार्केट तथा विश्व व्यापार की भाषा बनना। विश्व का कोई कोना चाहे वह यूरोप हो या एशिया, चीन हो या अमेरिका, रूस हो या जापान, जर्मनी हो या चेकोस्लोवाकिया उसने अपने डैने सभी जगह फैला रखे हैं। अधुनातन प्रौद्योगिकी और तकनीक, मशीनीकरण और कंप्यूटरीकरण और इनसे जुड़े नाना प्रोग्रामों की भाषा स्थापित होने के कारण अंग्रेजी आज रोजी-रोटी, व्यवसाय, वाणिज्य, इन्फार्मेटिक्स और समूह संचार के साथ ही विधि और न्याय, शासन और प्रशासन में प्रयुक्त होने वाली सर्वोपरि भाषा बन चुकी है। उसकी प्रतियोगिता और प्रतिद्वंद्विता में चीनी, रूसी, जापानी, जर्मनी आदि भाषाएँ भी नहीं ठहर पा रही हैं। हिंदी की स्थिति और भी विषम और त्रासद है। राजभाषा हिंदी की त्रासदी है, भारतीय संविधान द्वारा अंग्रेजी को 'सैकेंड लैंग्वेज' के रूप में स्वीकृति प्रदान करना। हिंदी जहाँ विज्ञान और विज्ञानेतर विषयों, तकनीक, प्रौद्योगिकी, वाणिज्य-व्यवसाय की राजभाषा बनने तथा प्रकारांतर से 'जॉब ऑरिएनटेशन' से जुड़ने का उपक्रम कर रही है, वहीं उसे भारत में ही (जहाँ की वह भाषा है) शासन-प्रशासन की भाषा बनने में भी पिछले कई सालों से निरंतर संघर्ष करना पड़ रहा है। इन विडंबनापूर्ण विसंगतियों में उसके

समक्ष जो बड़ा सहारा है, वह है अनुवाद का अर्थात् अंग्रेजी में अभिव्यक्त ज्ञानराशि का हिंदी में अंतरण करना। इस अंतरण की क्रिया-प्रक्रिया में उसे अनुवाद के विविध भाषाई संदर्भों में अनेक समस्याओं, अनेक प्रश्नों से जूझना पड़ रहा है।

विषय वैभिन्नय, संदर्भ परिवर्तन और क्षेत्रगत विविधता किसी भाषा की प्रयुक्ति को रेखांकित करते हैं। वस्तुतः भिन्न संदर्भों, विषयों और क्षेत्रों में एक ही भाषा के विविध रूप प्रयुक्त होते हैं। विशिष्ट क्षेत्र में प्रयुक्त होने पर शब्द का अर्थ संकुचित, विस्तृत अथवा परिवर्तित हो सकता है। इस प्रकार किसी विषय, संदर्भ क्षेत्र आदि में भाषा का विशिष्ट रूप प्रयुक्त होता है और भाषा का यह विशिष्ट, प्रयुक्त रूप उस कार्यक्षेत्र की प्रयुक्ति कहलाती है। अनुवाद के संदर्भ में हिंदी में अनेक प्रयुक्तियाँ हैं और उनके अनुवाद की कठिनाइयाँ और प्रश्न अनेक हैं।

राजभाषा हिंदी के प्रयुक्ति क्षेत्र साहित्य (कविता, नाटक, कहानी, उपन्यास, निबंध आदि), अनेक कार्यालय, संसद (लोकसभा, राज्यसभा, विधान सभाएँ, विधान मंडल) न्याय, विधि, शासन-प्रशासन, वाणिज्य, बैंकिंग, सामाजिक विज्ञान, विज्ञान, अंतरिक्ष, तकनीक, इंजीनियरी और प्रौद्योगिकी, आयुर्विज्ञान, आयुर्वेद, संस्कृति, धर्म तथा दर्शन से लेकर खेल-कूद और विज्ञापन तक के नाना आयामों में अनुवाद संबंधी समस्याएँ और उनसे जुड़े प्रश्न अक्सर उठाए जाते हैं। कहा जा चुका है कि 'डिस्कोर्स' अर्थात् 'प्रयुक्ति' एक ही भाषा का ऐसा प्रयोगपरक विशिष्ट रूप होता है, जिसमें किसी शब्द का अर्थ-परिवर्तन, अर्थ-संकोच अथवा अर्थ-विस्तार हो सकता है। परिणामस्वरूप अनुवादक के समक्ष कठिनाइयाँ उपस्थित होती रहती हैं और अनुवाद पर प्रश्न-चिह्न लगाए जाते रहते हैं। अनुवाद के संदर्भ में विविध प्रयुक्ति क्षेत्रों की कठिनाइयों का रेखांकन और उनके निराकरण के उपायों की संकल्पना इस आलेख का अभीष्ट है। इस संदर्भ में सर्वप्रथम साहित्य के अनुवाद संबंधी प्रश्नों पर विचार करना समीचीन होगा।

सृजनात्मक साहित्य के प्रमुख घटक कविता और नाटक के अनुवाद के संबंध में नाना प्रकार की मान्यताएँ प्रचलित हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि कविता का अनुवाद हो ही नहीं सकता। कुछेक का मत है कि अनुवाद रस निचोड़ा हुआ फल है। आई. ए. रिचर्ड्स की मान्यता है कि ''अनुवाद इस ब्रह्मांड की सबसे कठिन क्रियाओं में से एक है।'' (ट्रांसलेशन इज वन ऑफ द मोस्ट डिफीकल्ट एक्टिविटीज ऑफ द कॉसमस) फारसी कवि उमर खैय्याम के अंग्रेजी अनुवादक एडवर्ड फिट्जेराल्ड ने लिखा है कि ''मरे हुए गिद्ध की अपेक्षा मैं जीवित गौरैया अधिक पसंद करता हूँ।'' (आई वुड रादर हैव ऐ लिव स्पैरो दैन ए डेड ईगेल)। विलियम कपूर की मान्यता है कि ''मूल के प्रति पूरी वफादारी सही अर्थों में बेवफाई है।'' (टोटल फाइडाल्टि इज आल्सो अनफेथफुलनेस)

इसी तरह की फ्रांसीसी कहावत है कि ''अनुवाद एक ऐसी स्त्री है जो यदि वफादार है तो सुंदर नहीं और यदि सुंदर है तो वफादार नहीं।'' कुल मिलाकर साहित्यिक अनुवाद के संदर्भ में की गई ये टिप्पणियाँ अनुवाद पर एक प्रश्न-चिह्न है। इस प्रश्न की मूल अर्थवत्ता यह है कि साहित्य का सही और शत-प्रतिशत अनुवाद नहीं हो सकता। अनुवादक अपनी ओर से कुछ-न-कुछ घटाता-बढ़ाता है, अपनी कल्पना का सन्निवेश भी करता है। इसीलिए अनुवाद को अनुसृजन (ट्रांसक्रिएशन) भी कहा गया है।

कविता के अनुवाद की कई कठिनाइयाँ हैं। इसमें प्रमुख हैं – ध्वन्यात्मक अभिव्यक्तियों का अनुवाद तथा नाद सौंदर्य, छंद, अप्रस्तुत विधान और संस्कृतिमूलक शब्दावली का अनुवाद। जर्मन आलोचक वाल्टर बेंजामिन ने लिखा है कि ''कविता के कथ्य और भाषा का रिश्ता फल और छिलके का रिश्ता है।'' इस दृष्टि से विचार करें तो देखते हैं कि शब्दार्थ के अपार्थकत्व और असंपृक्ति काव्यभाषा की प्रमुख विशेषता है। महाकवि गोस्वामी तुलसीदास ने लिखा है कि ''गिरा अरथ जल बीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न।'' शब्दार्थगत इस अभिन्नता को मद्देनजर रखकर ही अनुवाद होना चाहिए, किंतु यह कार्य अत्यधिक दुष्कर है। फारसी के कवि उमर खैय्याम की रूबाइयों के कई अनुवाद अंग्रेजी में हुए हैं जिनमें एडवर्ड फिट्ज़ेराल्ड का अनुवाद सबसे अच्छा माना जाता है। उमर खैय्याम की एक रूबाई इस प्रकार है :

आयद सहरे निराजे मयखान-ए या
किए रिद खराबाती व दीवान-ए या
बरखज़ कि पुर कुनेय पैमान-ए जे मय
जाँ पेश कि पुरु कुनंद पैमान-ए या

(प्रातः काल हमें अपने मयखाने से आवाज आई कि ऐ मदिरा पान करने वाले और मेरे दीवाने, उठ तथा मय से अपना प्याला भर ले। कहीं ऐसा न हो कि हमारे जीवन का प्याला भर जाए अर्थात् मौत का बुलावा आ जाए।)

एडवर्ड फिट्ज़ेराल्ड ने अनुवाद करते समय फारसी के इस रूबाई छंद (जिसमें प्रथम, द्वितीय और चतुर्थ पंक्ति तुकांत है और तृतीय अतुकांत) के आधार पर अंग्रेजी में रूबाई छंद को अनूदित करने का प्रयास किया है। उनके अनुवाद के आधार पर ही हिंदी में कई समर्थ कवियों – मैथिलीशरण गुप्त, सुमित्रानंदन पंत, हरिवंशराय बच्चन आदि ने पद्यबद्ध अनुवाद प्रस्तुत किए हैं। किंतु इन रचनाकारों को छंद (शिल्प) और भाव (कथ्य) की दृष्टि से कहाँ तक सफलता मिली है, यह एक विचारणीय प्रश्न है। उमर खैय्याम की उक्त उल्लिखित रूबाई का फिट्ज़ेराल्ड द्वारा किया गया अंग्रेजी अनुवाद इस प्रकार है :

'ड्रीमिंग हवेन डांस लेफ्ट हैंड वाज इन द स्काई
आई हर्ड ए वाइस विदिन द टेवर्न क्राई
अवेक, माई लिटिल वन्स एंड फिल द कप
बिफोर लाइफ्स लिकर इन इट्स कप बी ड्राइ।'

इस अंग्रेजी अनुवाद को 'बेस' बनाकर हिंदी में किए गए अनुवाद हैं :

(1) *"वाम कनक कर ने उषा के*
जब पहला प्रकाश डाला,
सुना स्वप्न मैंने सहसा
गूँज उठी यों मधुशाला –
उठो, उठो, ओ मेरे बच्चो,
पात्र भरो न विलंब करो,
सूख न जावे जीवन-हाला
रह जावे रीता प्याला।"

—मैथिलीशरण गुप्त (रूबाइयत उमर खैय्याम)

(2) *"उषा ने ले अँगड़ाई हाथ*
दिए जब नभ की ओर पसार,
स्वप्न मदिरालय के बीच
सुनी तब मैंने एक पुकार –
उठो मेरे शिशुओ नादान,
बुझा लो जी पी-पी मदिरा भूख,
नहीं तो तब प्याली की शीघ्र
जाएगी जीवन मदिरा सूख।"

—बच्चन (खैय्याम की मधुशाला)

(3) *खोलकर मदिरालय का द्वार।*
प्रातः ही कोई उठा पुकार
मुग्ध श्रवणों में मधुरव घोल।
जाग उन्मद मदिरा के छात्र
ढुलक कर यौवन मधु अनमोल।
शेष रह जाए नहीं मृदु मात्र ढाल
जीवन मदिरा जी खोल।
लबालब भर ले उर का पात्र।

—सुमित्रानंदन पंत (मधुज्वाल)

फारसी से अंग्रेजी और हिंदी के इन काव्यानुवादों में शब्दार्थगत पर्याप्त अंतर है। इससे स्पष्ट है कि अनुवादक रचनाकारों ने शब्द और भावगत अनुवाद के स्तर पर पर्याप्त स्वच्छंदता बरती है। वस्तुतः यह काव्यानुवाद का महत्त्वपूर्ण प्रश्न है एवं विवशता भी। इसी तरह के अनेक उदाहरण अन्य काव्यानुवादों से भी दिए जा सकते हैं। धर्मवीर भारती ने एजरा पाउंड की कविताओं के हिंदी अनुवाद में काफी छूट ली है। मलार्मे की कविता 'एपारीशन' का 'रूप-छल' शीर्षक से कुँवर नारायण द्वारा प्रस्तुत किया गया हिंदी अनुवाद, मराठी कवि दया पवार की कविता 'चिमड़ी' के हिंदी में 'मुन्नी' शीर्षक से चंद्रकांत बांदिबडेकर का अनुवाद तथा 'गौरैया' शीर्षक से चंद्रकांत पाटिल का अनुवाद तथा 'चिमड़ी' शीर्षक से डॉ. गोदरे का अनुवाद भी मात्र अनुवाद नहीं है, वरन अनुसृजन है।

संस्कृत से हिंदी, बांग्ला से हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के हिंदी में प्रस्तुत काव्यानुवाद भी सही अर्थों में अनुवाद न होकर अनुसृजन हैं। अनुवाद की प्रक्रिया — पाठ विश्लेषण, अंतरण, पाठ समायोजन अथवा पुनर्गठन आदि के अन्यान्य चरण शैली, वर्तनी, संरचना और अर्थ संप्रेषण से जुड़े रहते हैं। इन सभी स्तरों पर शत-प्रतिशत अनुवाद कर पाना काव्यानुवादक के लिए एक चुनौती है। इसी कठिनाई को दृष्टि पथ में रखकर विल हेल्म ने लिखा है कि अनुवाद के सभी प्रयास किसी असंभव कार्य को पूरा करने के उपक्रम हैं। इसीलिए सिडनी की भी यह मान्यता है कि ''विचार तो अनूदित किए जा सकते हैं किंतु शब्द और उनकी अर्थछायाएँ नहीं।'' अनुवाद चाहे अंतःभाषिक (इंट्रा लिंग्वल) हो अथवा अंतर्भाषिक (इंटर लिंग्वल) दोनों ही बड़े कठिन काम हैं। काव्यानुवाद के संबंध में मात्र इतना ही हो सकता है कि हम स्रोत भाषा की शाब्दिक अभिव्यक्तियों के लिए लक्ष्य भाषा में स्पष्ट शाब्दिक समतुल्य अभिव्यक्तियाँ न मिलने पर अनुसृजन का सहारा लें। इस तरह काव्यानुवाद एक तरह का साहित्यिक अनुसृजन है, जिसमें अनुवादक का दायित्व होता है कि वह मूल भाव को यदि यथावत् प्रस्तुत नहीं कर पाया है तो उसका भ्रम तो उत्पन्न करे। प्रसाद की 'कामायनी' और 'आँसू' के अनुवादकों — बी.एल. साहनी, जयकिसन दास सदानी, मनोहर बंद्योपाध्याय — आदि ने कुछ इसी प्रकार का उपक्रम किया है। यही कारण है कि उनके अनुवादों में मूल रचना से अनुस्यूत रस का कसाव अनुवाद में श्लथ और रुग्ण हो गया।

काव्यानुवाद का एक दूसरा जटिल प्रश्न है — ध्वन्यात्मक अर्थछायाओं और नाद सौंदर्य का अनुवाद। काव्य और श्रेष्ठ काव्य का अधिकांश हिस्सा ध्वन्यार्थमूलक अथवा व्यंग्यार्थपरक, निहितार्थमुक्त, संकेत-प्रधान तथा गूढ़ार्थ से संयुक्त होता है। अंग्रेजी में कहें तो कह सकते हैं कि कविता में जो 'सजैशन' होता है अथवा जो काव्यगत 'सजैस्टिविटी' है उसे लक्ष्य भाषा में कैसे उतारा जाए? क्या गोस्वामी जी की चौपाई की इस अर्द्धाली ''कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि'' का अंग्रेजी में ''हियरिंग टिंकलिंग साउण्ड ऑफ

एंकलेट एंड बैंगिल'' से किया जाना संभव है? अथवा देव के निम्नलिखित पद का अनुवाद क्या साध्य है?

''रीझि रीझि, रहसि रहसि हँसि हँसि उठै,
साँसे भरि आँसू भरि कहत दई दई।
चौंकि चौंकि, चकि चकि औचक उचक देव,
छकि छकि, बकि बकि परत बई बई।''

कुल मिलाकर काव्यानुवाद के कई प्रश्न हैं। भाषांतरण के साथ ही साथ वातावरण की सृष्टिमूलक शब्दावली, नाद सौंदर्य, प्रस्तुत विधान (बिंब, प्रतीक, सादृश्य-मूलक अलंकार आदि) के अनुवाद का प्रश्न अनुत्तरित ही रहता है।

काव्यानुवाद के संदर्भ में ही नाट्यानुवाद की भी एक जटिल समस्या है। दृश्य काव्य की कुछ मूलभूत विशेषताएँ हैं, जैसे वातावरण का चित्रण, वेशभूषा, अभिनय, रीति-रिवाज, स्लैंग्स (भदेस भाषा) आदि। चूँकि दृश्यकाव्य अभिनय प्रधान होता है और मध्ययुगीन नाटकों में लोक भाषा का प्रयोग भी मिलता है, इसलिए अनुवाद की एक जटिल समस्या बनी रहती है। इस दृष्टि से शेक्सपीयर और उनके पूर्ववर्ती नाटकों तथा बीसवीं शती के ऑर्थर मिलर के नाटकों के जो हिंदी अनुवाद प्रस्तुत हुए हैं, उनमें इन तरह की कठिनाइयाँ सामने आई हैं। प्रतिभा अग्रवाल ने ऑर्थर मिलर के नाटक 'ऑल माई संस' का हिंदी अनुवाद 'मेरे बच्चे' शीर्षक से प्रस्तुत किया है और अमरीकी 'स्लैंग्स' अर्थात् अमरीकी अंग्रेजी के लोकभाषा रूप में हिंदी अनुवाद की कठिनाई बराबर महसूस की है। गिब्सन के नाटक 'घोस्ट' का नेमिचंद्र जैन ने 'प्रेत' शीर्षक से अनुवाद किया है। किंतु देश, काल, वातावरण को चित्रित करने वाली अंग्रेजी शब्दावली का अनुवाद ठीक से हो नहीं पाया है। वातावरण की सृष्टिमूलक कृतियों का अनुवाद और भी दुस्साध्य है। इस संदर्भ में अंग्रेजी के कवि कॉलरिज की वातावरण की सृष्टिमूलक कविताओं 'कुबला खाँ', 'ऐंसिएंट मैरिनर', 'फ्रास्ट एट मिडनाइट' का उल्लेख किया जा सकता है।

समग्रतः कविता और नाटक के अनुवादों की कठिनाइयों को दूर करने के लिए अनुसृजन का ही सहारा लेना पड़ता है। रंगमंच के अनुवाद के लिए अनुवादक से यह आशा की जाती है कि उसे दोनों भाषाओं के थियेटर का भी अच्छा ज्ञान हो, यही नहीं दोनों भाषाओं के मुहावरों, लोकोक्तियों, लोकभाषाई प्रयोगों, संस्कृतिमूलक शब्दावली, संवाद शैली—(छंद), धर्म-दर्शन और समाज का भी उसे परिज्ञान हो।

कविता के अनुवाद के संदर्भ में एक प्रश्न सहज ही उठता है कि काव्यानुवाद पद्य में हो अथवा गद्य में। काव्यानुवाद यदि पद्य में किया जाता है तो स्रोत भाषा की संगीतात्मकता, लयात्मकता और ध्वन्यात्मकता का अंतरण ठीक से नहीं हो पाता और यदि गद्य में किया जाता है तो काव्य का समूचा सौंदर्य नष्ट हो जाता है। उसकी रमणीयता, उसका रस तत्त्व छिन्न-भिन्न हो जाता है। उदाहरण के लिए, महाकवि देव

की इन पंक्तियों का किया हुआ गद्यानुवाद क्या काव्यगत रमणीयता और सौंदर्य, रसाभिव्यक्ति तथा सादृश्य विधान आदि की रक्षा कर सकेगा?

'झहरि झहरि झीनी-झीनी बूंद है परति मानो,
घहरि घहरि घटा घिरी है गगन मैं।
आनि कह्यो स्याम मोसों, चलो झूलिबे कों आजु,
फूली न समानी, भयी ऐसी हौं मगन मैं।
चाहत उठ्योइ उड़ि गई सो निगोड़ी नींद,
सोय गए भाग मेरे जागि वा जगन मैं।
आँखि खोलि देखौं तो मैं, घन हैं न घनश्याम,
वेई छाई बूंदें मेरे आँसू ह्वै दृगन मैं।।''

कथा साहित्य के अनुवाद के अपने प्रश्न हैं। उपन्यास और कहानियों में वर्णित जटिल सामाजिक संरचना और संस्कृतिमूलक तत्त्वों के अनुवाद का प्रश्न वहाँ महत्त्वपूर्ण है। स्रोत भाषा में प्रयुक्त लोकोक्ति और मुहावरे, व्यक्तिवाचक नामवाची शब्दावली, लोक विश्वासों, मिथकों, प्रतीकों, रीति-रिवाजों और धार्मिक विश्वासों आदि साहित्य-भाषा के अन्यान्य घटक होते हैं। अतः अनुवादक के सामने स्रोत भाषा के उक्त संदर्भों का अनुवाद एक प्रश्नचिह्न बना रहता है। प्रेमचंद की कहानियों के अनुवाद, गुरुदयाल मलिक (1946), प्रकाशचंद्र गुप्त (1955), डेविड रूबिन (1969) तथा नंदिनी, भूपैंनी आदि ने किए हैं। इन कहानियों में भौतिक संस्कृतिमूलक शब्दावली (चमार, बनिया, महाजन, पूरी, असली घी, अचार, रायता, चिखौना, पत्तल, चुल्लू आदि) भरी पड़ी है। अलग-अलग अनुवादकों ने इन शब्दों के अलग-अलग अनुवाद किए हैं। जैसे कुल्हड़ के लिए 'कप', 'वाइन ग्लास', 'जग', 'क्ले कप' आदि।

स्पष्ट है कि दो भाषाओं में समानार्थी स्थानापन्न नहीं होते। अतः उनके लाक्षणिक अर्थ को ध्यान में रखना होता है। अंग्रेजी के प्रसिद्ध उपन्यासों के हिंदी अनुवादों – (हेमिग वे के 'द ओल्ड मैन एंड द सी' – सागर और मनुष्य : आनंद प्रकाश जैन; 'द ग्रेट गैटसवि' उपन्यास का अज्ञेय जी द्वारा 'लालसा' शीर्षक से किया गया अनुवाद आदि) में बहुत सारे लाक्षणिक प्रयोगों के अनुवाद में जो कठिनाइयाँ आई हैं, उनका अनुसृजन के अतिरिक्त अन्य कोई हल नहीं है। पौराणिक तथा आँचलिक कथा साहित्य के अनुवाद की और भी अधिक सीमा होती है। दार्शनिक विवेचन प्रधान उपन्यासों, कहानियों के अनुवाद अपने प्रश्नों के साथ अलग ही दिखाई देते हैं। इस दृष्टि से विष्णु खांडेकर का उपन्यास 'ययाति', हजारी प्रसाद द्विवेदी का 'बाणभट्ट की आत्मकथा', राही मासूम रजा का 'आधा गाँव', भगवती चरण वर्मा का 'चित्रलेखा' आदि उल्लेखनीय हैं।

कथा साहित्य में निबंध के अनुवादों में शिल्प और अभिव्यक्ति का जटिल प्रश्न होता है। अंग्रेजी के प्रसिद्ध निबंधकार फ्रांसिस बेकन अपनी समासयुक्त सघन भाषा-शैली

के लिए प्रसिद्ध हैं। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'बेकन विचार रत्नावली' शीर्षक से बेकन के निबंधों का अनुवाद किया है। इसमें उन्हें कहाँ तक सफलता मिली है? यह एक विचारणीय प्रश्न है। यही नहीं क्या शुक्ल जी के निबंधों की सघन सारगर्भ समास शैली का अनुवाद आसान होगा? 'लोभ और प्रीति' निबंध की ये पंक्तियाँ अनुवाद की दृष्टि से अत्यंत कठिन हैं — ''लोभियों, तुम्हारा क्रोध, तुम्हारा इंद्रिय निग्रह, तुम्हारी मानापमान समता, तुम्हारा तप अनुकरणीय है। तुम्हारी निष्ठुरता, तुम्हारी निर्लज्जता, तुम्हारा विवेक, तुम्हारा अन्याय विगहर्णीय है। तुम धन्य हो। तुम्हें धिक्कार है।'' क्या उक्त संधि युक्त सघन पदावली और व्यंग्यात्मक प्रहारक भाषा का शत-प्रतिशत अनुवाद हो सकता है?

कुल मिलाकर निष्कर्ष यह है कि सृजनात्मक साहित्य के विविध घटकों के अनुवाद का मसला अनुवाद के अस्तित्व के विरुद्ध एक प्रश्नचिहून है। इसीलिए काव्यानुवाद को पुनःसृजन और कथानुवाद को मूल का अनुसृजन या अनुसरण अथवा अनुकरण कहा गया है। सुरेश सिंहल ने टी.एस. इलियट की कविताओं के अनुवाद किए हैं। इलियट की कविता — 'द वेस्ट लैंड' की पंक्ति और उसका अनुवाद 'एप्रिल इज द क्रूअलेस्ट मंथ' का अनुवाद 'टीस रहे बसंत के जख्म' — उक्त मान्यता का ज्वलंत प्रमाण है।

इसी तरह मानविकी, सामाजिक विज्ञान, विधि, न्याय-प्रशासन, बैंकिंग, वाणिज्य-व्यापार, मार्केट, खेलकूद, विज्ञापन, आयुर्विज्ञान, अंतरिक्ष विज्ञान और धर्म-संस्कृतिमूलक ग्रंथों के अनुवाद की अनेक समस्याएँ हैं और इनके अन्यान्य समाधान भी खोजे गए हैं। आज अनंत समस्याओं के घेरे में घिरे 'अनुवाद' की मूल्यवत्ता इस बात में निहित है कि वह सांस्कृतिक अंतरण (ट्रांस्टफरेंस ऑफ कल्चर्स) भावात्मक एकता, विश्व मैत्री और ज्ञान मंजूषा की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कुंजी है।

अनुवाद हजारों वर्षों से मानव-ज्ञान के संवहन और विभिन्न भाषाओं में उसकी अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम रहा है। वस्तुतः अनुवाद का अस्तित्वमूलक इतिहास तो उतना ही प्राचीन है जितना भाषा-साहित्य का इतिहास। किंतु इधर बीसवीं शती में अनुवाद के स्वतंत्र चिंतन, उसके स्वायत्तधर्मी अस्तित्व की संरक्षा का प्रश्न उठा है। इन दिनों विशिष्ट अनुशासन के रूप में उसके अध्ययन की आवश्यकता और उपादेयता पर विशेष बल दिया जा रहा है। अनुवाद के इतिहास की ओर दृष्टिक्षेप किया जाए तो उसकी अदृश्य किंतु अनवरत यात्रा ईसा से लगभग तीन-साढ़े तीन हजार वर्ष पुरानी मानी गई है। वस्तुतः अनुवाद की इस अंतहीन विकास-यात्रा में अनेक पड़ाव आए हैं और उनसे जुड़े अनेक प्रश्न भी उठते रहे हैं। शिलालेखों के भाषांतरण में अपने अस्तित्व की खोज करने वाला 'अनुवाद' आज कंप्यूटर युग में प्रवेश कर गया है। वह अपनी अस्मिता का संधान आज 'मशीन ट्रांसलेशन' में कर रहा है।

❑

डॉ. पूरनचंद टंडन

राष्ट्रीय एकता एवं अनुवाद

'एकता में बल है' – इस सूक्ति के माध्यम से यह अर्थ अभिव्यक्त होता है कि अगर जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में एकत्र होकर, संगठित होकर समाज के कल्याण हेतु कोई भी कार्य किया जाए तो वह निःसंदेह सफल होगा। भारत देश है विभिन्नताओं का। यहाँ भाँति-भाँति के खान-पान, वेशभूषा, जाति, भाषा, धर्म, संस्कृतियों, आचारों-विचारों आदि में समन्वय की भावना देखने को मिलती है। यह ऐसा ही है जैसे एक माला के धागे में अनेक रंग-बिरंगे मोतियों को पिरो देना या फिर एक गुलदस्ते में रंग-बिरंगे पुष्पों को सँजो देना। इस प्रकार भारत में 'अनेकता में एकता' के दर्शन होते हैं। यही एकता इस राष्ट्र की रीढ़ है। किसी भी राष्ट्र की एकता के अंतर्गत 'भाषा' की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। भाषा भावों और विचारों को अभिव्यक्त करने का एक सशक्त माध्यम है। भाषा के जन्म के साथ ही, 'अनुवाद' का भी जन्म होता है। अनुवाद के माध्यम से व्यक्ति अपनी संस्कृति के अलावा अन्य संस्कृतियों को भी जान सकता है। अनुवाद के माध्यम से ही वह अपनी सभी सामासिक जिज्ञासाओं को शांत कर सकता है। राष्ट्रीय एकता के संदर्भ में अनुवाद की भूमिका को स्पष्ट करने से पहले 'राष्ट्रीय एकता' एवं 'अनुवाद' के महत्व आदि पर भी विचार करना आवश्यक है।

'राष्ट्र' शब्द संस्कृत के 'राजृ' (राज्) धातु और 'ष्ट्रन' प्रत्यय के योग से बना है, जिसका मूल अर्थ है – राज्य, राष्ट्र, देश और साम्राज्य। इसी प्रकार 'राष्ट्रीय' शब्द बना है – 'राष्ट्रे भव इति राष्ट्रीयता। राष्ट्र + घञ् (रष्ट्रियः)'। हिंदी भाषा में 'राष्ट्रीय एकस्य भाव इति एकता' के रूप में हैं।[1] राष्ट्रीय एकता के अभाव में किसी भी राष्ट्र का विकास असंभव है। राष्ट्रीय एकता का मूल आधार सांस्कृतिक एकता को माना जाता है। इसके लिए मनुष्य का साम्प्रदायिक रूप से सहिष्णु होना बहुत जरूरी होता

है। 'मानवमूल्य-परक शब्दावली से संबंधित विश्वकोश में 'राष्ट्रीय एकता' को इस प्रकार परिभाषित किया गया है – "समस्त राष्ट्र को एकता के सूत्र में बाँधना ही किसी राष्ट्र की राष्ट्रीय-एकता है। आज देश में आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक विवशता के कारण राष्ट्रीय-एकता प्रभावित हो रही है। यह हमें नही भूलना चाहिए कि एकता जीवन है, फूट मृत्यु। एकता उन्नति है, फूट अवनति तथा एकता बल है और फूट पतन।"[2] इस प्रकार यहाँ एकता को शक्ति, उन्नति एवं जीवन का प्रतीक माना गया है। 'राष्ट्रीय एकता' जिस देश में होती है, उसे कोई भी अन्य देश जीत नहीं सकता। इसी के माध्यम से देश के चारित्रिक बल का भी पता चलता है। 'राष्ट्रीय एकता' का अर्थ एवं महत्व जानने के पश्चात् अब अनुवाद का अर्थ एवं महत्व जानना भी आवश्यक है।

भाषा के जन्म से ही 'अनुवाद' का जन्म भी जुड़ा है और तभी से इसकी आवश्यकता भी बनी हुई है। यह आज के आधुनिक युग में न केवल प्रासंगिक है, बल्कि अपरिहार्य भी है। किसी भी समाज और देश का विकास अनुवाद के बिना संभव नहीं है। भारत जैसे बहुभाषा-भाषी एवं बहु-सांस्कृतिक देश में अनुवाद परस्पर संवाद की सशक्त भाषा है। यदि यह कहा जाए कि प्रत्येक भारतीय – चाहे वह पर्वतीय क्षेत्र में रहता हो अथवा समतल भूमि पर, नगर और शहर में रहता हो या गाँव में, विकसित राज्य का निवासी हो या अविकसित – वह जन्मजात अनुवादक होता है, तो यह गलत न होगा। अनेक जातियों, धर्मों, समुदायों, संस्कृतियों, भाषाओं और बोलियों के इस देश की भौगोलिकता ही अनुवाद की सशक्त आधारशिला रखती है। यदि हम एक-दूसरे से जुड़ना चाहते हैं, बोलना चाहते हैं, परस्पर समझना चाहते हैं, आदान-प्रदान, विचार-विनिमय करना चाहते हैं और इनसे भी ऊपर एक-दूसरे के साथ एकता की कड़ी में पिरोए जाना चाहते हैं तो हमें अनुवाद की शरण में जाना ही होता है।

भारत में बच्चा जब जन्म लेता है तो एक भाषा विरासत में उसे माँ के दूध के साथ प्राप्त होती है। 'मातृभाषा' कहलाने वाली इस भाषा को सीखने-जानने के लिए इस बच्चे को किसी विद्यालय या संस्था में नहीं जाना होता। वह इस भाषा को माँ के हाव-भावों से, आंगिक चेष्टाओं से धीरे-धीरे सीख लेता है। दूसरी भाषा वह बच्चा घर से बाहर निकलकर, पार्क में जाकर, अड़ोस-पड़ोस में जाकर या घर में आने वाले, अतिथियों से संवाद करते-करते सीख लेता है। इसे हम 'संपर्क भाषा' (Link Language) कहते हैं। इसके लिए शिक्षक बनता है – 'समाज'। स्कूल-कॉलेज की आवश्यकता इसके शिक्षण-अर्जन में भी नहीं पड़ती। अतः बच्चा सोचता अपनी भाषा में है और बोलता सामने वाले को ध्यान में रखकर 'संपर्क भाषा' में है, जबकि सामने वाला यदि उसे

ग्रहण करता है तो 'संपर्क भाषा' से अपनी भाषा में अंतरित करके ही ग्रहण करता है। इस प्रकार बांग्ला-भाषी बच्चे का संवाद तमिल भाषी या अन्य किसी भाषा-भाषी से होता है तो इसमें अनुवाद की प्रक्रिया सहज भाव से कार्य करती रहती है। यही प्रक्रिया प्रत्येक भारतीय को एकता के सूत्र में बाँधती है, परस्पर जोड़ती है। हमारे त्योहार, हमारे रीति-रिवाज, हमारी वेशभूषा, आभूषण, संस्कार और आस्था-विश्वास से जुड़े अनुष्ठानों का एक-दूसरी संस्कृति में आदान-प्रदान, परस्पर भागीदारी और प्रभावशीलता के मूल में 'अनुवाद' ही काम करता है। यहाँ तक की खान-पान और पकवानों का राष्ट्रीय भ्रमण भी इसी अनुवाद प्रक्रिया से उपकृत है।

यहीं नहीं, संस्कृत एवं हिंदी का समस्त नीतिकाव्य इस बात की दुहाई देता रहा है कि ''पहले तोलो, फिर बोलो''। सोच-समझ कर बोलने की 'एक भाषा' है और उसे मौखिक या लिखित में अभिव्यक्त करने की 'दूसरी भाषा'। वक्ता सोचने और बोलने या लिखने के बीच की दूरी अनुवाद की प्रक्रिया से ही पूरी करता है। शब्द चयन, उनका वाक्य-विन्यास में पिरोया जाना, उचित-अनुचित का बोध इसी प्रक्रिया से संबद्ध होता है। इसीलिए कबीर ने कहा भी था :

कबिरा जिह्वा बावरी, कह गई सरग पाताल।
आप कही भीतर गई, जूते खात कपाल।।

अनुवाद में भी 'स्रोत भाषा' और 'लक्ष्य भाषा' के बीच अनुवादक को एक सेतु-निर्माण करना होता है। अनुवाद वस्तुतः राष्ट्रीय एकता, सामाजिक एकता, धार्मिक एकता, सांस्कृतिक एकता, वैचारिक एकता और इसी प्रकार अन्य क्षेत्रों एवं अनुशासनों में एकता स्थापित करने वाला बहुआयामी, बहुदिशागामी सेतु है। यह एक ऐसा सेतु है जो परस्पर जोड़ता है, आदान-प्रदान के लिए, परस्पर विनिमय के लिए प्रेरित करता है। भेदभावों को, दूरियों को, बाधाओं को दूर करता है। निर्बाध आवागमन एवं अभेद विनिमय का मार्ग प्रशस्त करने वाली यह विद्या एवं विधा हर तरह से उपयोगी है, प्रासंगिक है। 'वैश्वीकरण' के इस युग में 'वसुधैव कुटुंबकम्' के मूलभूत भारतीय दर्शन का सार्थक विस्तार 'अनुवाद' द्वारा ही हो पा रहा है।

आज विभिन्न राज्यों की कलाएँ, कलात्मक सौंदर्य से सुसज्जित यथार्थ, वस्तुएँ, पर्व-उत्सव, संस्कार, आस्था-विश्वास और मान्यताएँ यदि अखिल भारतीय स्तर पर प्रसार पा रहीं हैं तो उसके भी मूल में अनुवाद ही है। अतः अनुवाद को पौराणिक, ऐतिहासिक, सामाजिक-सांस्कृतिक, साहित्यिक, शैक्षिक, वैचारिक, दार्शनिक एवं वैधानिक आदि दृष्टियों से हम, एकता स्थापित करने के सशक्त उपकरण एवं साधन के रूप में देखते और पाते हैं।

अनुवाद एक गंभीर कार्य है, इसलिए आज अनुवादक को एक ऐसे ईमानदार इंजीनियर की भूमिका निभानी होगी, जिसमें निष्ठा हो, समर्पण हो, जनहित, लोकहित, राष्ट्रहित तथा विश्वहित की सात्विक एवं पुनीत भावना हो। उसके समक्ष यह उद्देश्य सदा-सर्वदा रहना चाहिए कि राष्ट्र को विश्व के मंच पर ध्वजारोहण करते हुए युग-युगांतर तक न केवल खड़े रहना है, अपितु नेतृत्व भी प्रदान करना है। यदि अनुवादक को अनुवाद के क्षेत्र में सफलता प्राप्त करनी है और राष्ट्रीय स्तर पर एकता के मूल मंत्र का, राष्ट्रीय चेतना के विस्तार का बीजवपन करना है तो उसमें मुख्यतः निम्नलिखित गुणों का होना परम आवश्यक है :

(1) अनुवादक को अद्यतन एवं अधुनातन खोजों, परिवर्तनों, जानकारियों तथा उपलब्धियों का ज्ञान जुटाते रहना चाहिए। यह सतत् अध्ययनशीलता से, समसामयिक जानकारियों से तथा सूचना-तंत्र के माध्यम से ही संभव हो सकता है। जागरूकता अनुवादक की सफलता का मूल मंत्र है। राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर एकता स्थापित करने में यह अत्यंत कारगर उपाय है।

(2) अनुवादक को 'स्रोत भाषा' एवं 'लक्ष्य भाषा' की प्रकृति, व्याकरणिक व्यवस्था, शैली एवं अनुप्रयोगात्मकता का आधिकारिक ज्ञान होना चाहिए। इससे भाषाई एकता एवं आदान-प्रदान का मार्ग प्रशस्त होता है।

(3) अनुवादक को धैर्यवान, लगनशील, निष्ठावान, विवेकवान तथा अथक श्रम-साधक होना चाहिए। इससे राष्ट्रीय एकता के मार्ग में आने वाले भ्रमों का निवारण होता है और लक्ष्य की निश्चित प्राप्ति होती है।

(4) अनुवादक को अनुवाद के उपकरणों की, कोश-विज्ञान, कोशों के प्रकार, कोशों को देखने की कला, पारिभाषिक शब्दावली, थिसॉरस, विभिन्न शब्दावलियों की उपलब्धि, कंप्यूटर अनुवाद की अवधारणा तथा सीमाओं और शक्तियों की अद्यतन जानकारी भी होनी चाहिए। इससे राष्ट्रीय एकता के लिए सभी आधुनिक उपायों की मदद ली जा सकती है।

(5) नए शब्दों के आगमन, गठन, प्रयोग-अनुप्रयोग से भी शब्द निर्माण की प्रक्रिया तथा आवश्यकता से भी अनुवादक को अवगत होना चाहिए। तभी वह संस्कृतियों में प्रवेश कर सकता है तथा उन्हें परस्पर जोड़ ही सकता है।

(6) अनुवादक को 'स्रोत भाषा' के मुहावरों-लोकोक्तियों की, विशिष्ट प्रयोगों की, सूक्तियों, कथनों की गहन समझ बनानी चाहिए। इस प्रकार के असामान्य प्रयोग भाषा की शक्ति होते हैं। उनके मर्म को समझे बिना उसका अनुवाद दुष्कर और जोखिम-भरा होता है। अतः पूरी सावधानी बरतनी चाहिए। सांस्कृतिक समन्वय एवं समभाव

की रचना इसी आधार पर संभव हो सकती है।

(7) अनुवादक को अनुवाद कार्य के माध्यम से अनुवाद-अनुशासन की तथा अनुवादक समुदाय की विश्वसनीयता को बनाए रखने का अथक प्रयास करना चाहिए। यदि यह विश्वसनीयता खंडित होती है तो राष्ट्र को इसका भारी नुकसान उठाना पड़ता है। अनुवाद एवं अनुवादक को राष्ट्र की अखंडता बनाए रखने में रचनात्मक योगदान देना होता है।

अतः कहा जा सकता है कि इन गुणों के अभाव में कोई भी अनुवादक, एक सफल अनुवादक की श्रेणी में नही आ सकता। ऐसे में अनुवाद भी राष्ट्रीय एकता के लिए सशक्त भूमिका नहीं निभा सकता। अनुवाद के अंतर्गत जिन विभिन्न क्षेत्रों के माध्यम से राष्ट्रीय एकता को बल मिलता है, वे इस प्रकार हैं :

(1) साहित्यिक अनुवाद एवं राष्ट्रीय एकता
(2) जनसंचार माध्यमों में अनुवाद एवं राष्ट्रीय एकता
(3) वैज्ञानिक-तकनीकी अनुवाद एवं राष्ट्रीय एकता
(4) वाणिज्यिक अनुवाद एवं राष्ट्रीय एकता
(5) भाषा-शिक्षण में अनुवाद एवं राष्ट्रीय एकता
(6) सामाजिक-सांस्कृतिक अनुवाद एवं राष्ट्रीय एकता

1. साहित्यिक अनुवाद एवं राष्ट्रीय एकता : ज्ञान साहित्य के अनुवाद की अपेक्षा सर्जनात्मक साहित्य का अनुवाद अधिक जटिल एवं कठिन होता है। ज्ञान के साहित्य की माध्यम भाषा प्रायः अभिधा पर ही आश्रित रहती है। साहित्यिक अनुवाद को विभिन्न नामों से पुकारा जाता है। कोई इसे 'पुनर्रचना' कहता है, तो कोई इसे 'पुनर्सृजन' या 'अनुसर्जन'। रचनाकार अपने भावों और विचारों को रचना में बद्ध करता है तो वह सृजन करता है और जब अनुवादक उसे दूसरी भाषा में अभिव्यक्त करता है तो वह 'पुनर्सृजन' कहलाता है। मूल कृति के अंतर्गत संवेदना एवं शिल्प के स्तर पर जो विशेषताएँ होती हैं, अनुवादक उन्हीं विशेषताओं को अपने अनुवाद में पुनर्सृजित करता है। भारतीय योग दर्शन में एक विशेष प्रक्रिया – 'परकाया प्रवेश' का उल्लेख मिलता है, जिसके द्वारा योगी अन्य मनुष्यों के शरीर में प्रवेश कर उसके अनुभवों का स्वयं अनुभव कर सकता है। साहित्य के अनुवादक को योग समाधि के द्वारा 'परमानस प्रवेश' की साधना करनी होती है, जो असाध्य नहीं तो दुःसाध्य अवश्य है। यही क्रिया इस सह-अनुभूति की क्रिया से जोड़ती है, यही 'स्व' और 'पर' के भेद से दूर ले जाती है।

साहित्यिक अनुवाद को दो भागों में बाँटा गया है – पद्यानुवाद एवं गद्यानुवाद। पद्यानुवाद के अंतर्गत अनुवादक को कुछ बातों का ध्यान रखना पड़ता है कि लक्ष्य

भाषा के अंतर्गत अनूदित रचना में न तो फालतू शब्द हों और न ही उसकी भाषा आडंबरपूर्ण हो। उसमें यति, विराम का उपयोग होना चाहिए। बिंब, प्रतीक, दार्शनिक एवं सांस्कृतिक तत्वों का अनुवाद एवं अलंकारानुवाद सटीक होना चाहिए, साथ ही उसमें लय एवं छंद भी मूल के अनुरूप होने चाहिए। पद्यानुवाद के अंतर्गत अनेक महत्वपूर्ण कृतियों का अनुवाद हुआ है, जैसे सर्वप्रथम तुलसी कृत 'रामचरितमानस' का उड़िया, कन्नड़, कुमाऊँनी, गुजराती, तमिल, पंजाबी, मराठी, मलयालम, मैथिली, सिंधी, हरियाणवी, आदि प्रांतीय भाषाओं में सहज एवं बोधगम्य अनुवाद हुआ है। आधुनिक काल में जीवनानंद दास की कविताओं को स्वदेश भारती ने, विष्णु डे की कविताओं को भारतभूषण अग्रवाल ने बांग्ला में अनूदित किया है। रवींद्रनाथ ठाकुर की कविताओं को 'रवींद्र कविता कानन' के नाम से सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' ने अनूदित किया। इसी प्रकार, जयशंकर प्रसाद कृत 'कामायनी' का तेलुगु में डॉ. पांडुरंग राव के अलावा भी वाविलात सामयाजुलु ने अनुवाद किया। इन्होंने 'कामायनी' के अतिरिक्त प्रसाद कृत 'आँसू' का भी अनुवाद किया। वर्तमान समय में हिंदी भाषी केवल अनुवाद के माध्यम से ही शरतचंद्र, आशापूर्णादेवी, महाश्वेता देवी, विमल मित्र, रवींद्रनाथ टैगोर आदि महत्वपूर्ण साहित्यकारों को जान पाते हैं और अन्य भाषा-भाषी जयशंकर प्रसाद, महादेवी, निराला और प्रेमचंद आदि साहित्यकारों को अनुवाद के माध्यम से जान पाते हैं। गद्यानुवाद के अंतर्गत अनुवाद छंद, लय और ध्वन्यात्मकता के बंधन से मुक्त होता है और साथ ही पंक्ति बंधन से भी मुक्त होता है। वह मूल भाव को अधिक पंक्तियों में भी स्पष्ट कर सकता है। यहाँ गद्यानुवाद की कुछ प्रसिद्ध अनूदित रचनाओं का उल्लेख किया जा सकता है। जैसे, सियारामशरण गुप्त कृत 'नारी' को सुधाकांत राय ने, अमृतलाल नागर कृत 'बूँद और समुद्र' को 'बिंदुओ सिंधु' नाम से अर्चना कुमार ने, प्रेमचंद रचित 'गोदान' और 'निर्मला' का अनुवाद चित्रा देवी ने बांग्ला भाषा में किया। तेलुगु में आचार्य राव ने अमृतलाल नागर के उपन्यास 'अमृत और विष' का 'अमृतम्-विषम्' नाम से अनुवाद किया। हिंदी उपन्यासकार जैनेंद्र के उपन्यासों जैसे सुनीता, कल्याणी, सुखदा, त्यागपत्र एवं जयवर्धन का अनुवाद पुराणम् कुमार राघव शास्त्री ने इन्हीं नामों से किया। इसी क्रम में प्रेमचंद, रांगेय राघव, भगवतीचरण वर्मा आदि के भी उपन्यास तेलुगु भाषा में अनूदित हुए।

पद्यानुवाद एवं गद्यानुवाद के उपर्युक्त कुछ उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि अनुवाद ने हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषाओं के बीच एक सेतु के रूप में कार्य किया है एवं कर रहा है। अनुवाद वर्तमान दौर में एक सशक्त एवं प्रभावकारी विधा के रूप में सामने आया है। वेशभूषा, खान-पान, विश्वास-अंधविश्वास, टोने-टोटके, रीति-रिवाज, दार्शनिक चिंतन, भक्ति, परंपरा, तथा साहित्यिक मान्यताओं आदि की दिशा में कृतियों

के अनुवाद ने 'एकत्व' स्थापित किया है।

2. जनसंचार माध्यमों में अनुवाद एवं राष्ट्रीय एकता : अनुवाद के अंतर्गत एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है – जनसंचार माध्यमों में अनुवाद। आज की दौड़-भाग भरी जिंदगी में जनसंचार माध्यमों में अनुवाद की माँग बढ़ी है। 'संचार' शब्द अंग्रेजी के 'Communication', शब्द के पर्याय के रूप में प्रयुक्त होता है। इसका अर्थ है – सूचना देना, संदेश देना एवं संप्रेषण। 'संचार' के पहले 'जन' शब्द जुड़ने से 'जनसंचार' शब्द बना है। इसका अर्थ है – जनता तक संदेश या सूचना पहुँचाना। जनसंचार के माध्यमों को दो भागों में विभाजित कर सकते है – प्रिंट माध्यम एवं इलेक्ट्रॉनिक माध्यम। प्रिंट मीडिया के अंतर्गत समाचार पत्र-पत्रिकाएँ, पुस्तकें, पोस्टर, पंफलेट, बैनर, वॉल-राइटिंग आदि आते हैं। इलेक्ट्रॉनिक माध्यम के अंतर्गत रेडियो, टी.वी., फिल्में, कंप्यूटर, इंटरनेट, मोबाइल, वॉकी-टॉकी, फैक्स, टेलीप्रिंटर आदि आते हैं।

'प्रिंट माध्यम' के अंतर्गत 'समाचार पत्र' एक सशक्त माध्यम है। इसने समाज में अपनी महत्वपूर्ण जगह बनाई है। 1826 में जुगल किशोर के संपादन में हिंदी का पहला समाचार-पत्र 'उदंड मार्तंड' कलकत्ता से प्रकाशित हुआ था। राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन में समाचार पत्र-पत्रिकाओं की भूमिका महत्वपूर्ण थी। वर्तमान समय में हर प्रदेश से अनेक प्रादेशिक पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित हो रही हैं, जिनमें राष्ट्रीय, सामाजिक, सांस्कृतिक आदि विभिन्न विषयों से संबद्ध सूचनाओं एवं जानकारियों का अनुवाद हिंदी एवं अन्य प्रादेशिक भाषाओं में होता है। आज लगभग 55 हजार से अधिक पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन नियमित रूप से हो रहा है। इस प्रकार समाचार पत्र-पत्रिकाएँ अनुवाद के माध्यम से राष्ट्रीय एकीकरण की दिशा में आगे बढ़ रही हैं। कुछ समाचार पत्रों के नाम हैं – बांग्ला के 'आजकाल', 'वर्तमान' आदि; गुजराती के 'गुजराती समाचार', 'दिव्य भास्कर', कन्नड़ के 'जनतावासी', 'प्रभा', 'उषाकिरण' आदि; मराठी के 'केसरी', 'देशदूत', 'महाराष्ट्र टाइम्स' आदि। समाचार-पत्रों के पश्चात् प्रिंट माध्यम के अंतर्गत 'पुस्तकें' आती हैं। पुस्तकें ज्ञान-विज्ञान का ऐसा खजाना हैं, जो कभी समाप्त नहीं हो सकता। हिंदी एवं अन्य भाषाओं में अनूदित पुस्तकें राष्ट्र के वैचारिक परिदृश्य के निर्माण में सहायक होती हैं। इसी प्रकार अनूदित विज्ञापन भी सूचना का प्रसार करने एवं राष्ट्रीय एकता को कायम करने में सहायक सिद्ध होते हैं।

इलेक्ट्रॉनिक माध्यम 'रेडियो' का आविष्कार सर्वप्रथम 1895 में इटली के मार्कोनी ने किया। रेडियो का भारत में आगमन सन् 1923 में हो गया था। आजादी के पश्चात् रेडियो सरकार के अधीन आया। वर्तमान समय में रेडियो के 200 से भी अधिक प्रसारण केंद्र हैं, जिनके द्वारा देश की 98.8 प्रतिशत जनता इसकी प्रसारण सीमा में आती है।

आज भारत की अनेक स्थानीय बोलियों और भाषाओं में रेडियो का प्रसारण होता है। इस प्रकार हम यह कह सकते है कि रेडियो संपूर्ण देश की जनता को एकता के सूत्र में बांधे रखता है।

टी.वी. का पहला उपकरण 1925 में बेयर्ड ने बनाया। भारत में टेलीविजन की शुरुआत 15 सितंबर 1959 को यूनेस्को की सहायता से हुई। आज के दौर में केबल के आने से भारत में चैनलों की भरमार हो गई है। आज प्रादेशिक भाषाओं के चैनलों के आने से स्थानीय जनता की रुचि टी.वी. में बढ़ी है। आज प्रत्येक घर में टी.वी. सुलभता से उपलब्ध है। इसके माध्यम ये वे सूचनाएँ प्राप्त करते हैं और अपना मनोरंजन भी करते हैं। टी.वी. पर आने वाले कार्यक्रमों में भी राष्ट्रीय एकता की झलक मिलती है। बांग्ला-हिंदी अनूदित धारावाहिकों में श्रीकांत, चरित्रहीन, मुजरिम हाजिर, प्रथम प्रतिश्रुति आदि उल्लेखनीय हैं। इसी प्रकार मालगुडी डेज, भारत एक खोज, टीपू सुल्तान, रामायण, महाभारत आदि ऐसे धारावाहिक हैं, जिसका अनेक प्रादेशिक भाषाओं में अनुवाद हुआ। टी.वी. में राष्ट्रीय एकता का उदाहरण हमें 'कौन बनेगा करोड़पति' में भी मिलता है। हिंदी में बना यह धारावाहिक अब भोजपुरी में और बांग्ला में भी प्रसारित हो रहा है। भोजपुरी में शत्रुघ्न सिन्हा और बांग्ला में सौरभ गांगुली इसके 'होस्ट' हैं।

टी.वी. के अतिरिक्त कंप्यूटर एवं इंटरनेट भी राष्ट्रीय एकता में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। आज कंप्यूटर भारत की अनेक प्रादेशिक भाषाओं में उपलब्ध है। जैसे मराठी, असमिया, बांग्ला, तेलुगु, तमिल, गुजराती, मलयालय, पंजाबी आदि। वर्तमान समय में कंप्यूटर के माध्यम से अनुवाद कार्य भी प्रचुर मात्रा में किया जा रहा है, किंतु यह सौ फीसदी सही नहीं हो पाता है। कंप्यूटर सिर्फ शब्दानुवाद करता है, सामाजिक-सांस्कृतिक तत्वों को सुरक्षित रखने में यह अनुवाद अभी सक्षम नही है। भविष्य में ऐसा हो सकता है कि कंप्यूटर शत-प्रतिशत 'अनुवाद कार्य' में दक्ष हो जाए। आज इंटरनेट 'वसुधैव कुटुंबकम्' की अवधारणा को सार्थक सिद्ध कर रहा है। इसके माध्यम से व्यक्ति कहीं भी कोई भी सूचना मिनटों में पा लेता है और वह भी अपनी-अपनी भाषा में।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि जनसंचार के सभी माध्यमों में अनुवाद राष्ट्रीय एकता को मजबूत कर रहा है। समाचारों में, विज्ञापनों में, लेखों और अग्रलेखों में, संपादकीय में, फीचरों में और साक्षात्कार आदि में भी हम इसी अखिल भारतीय एकता को देख सकते हैं।

3. वैज्ञानिक-तकनीकी अनुवाद एवं राष्ट्रीय एकता : मनुष्य के जीवन में जैसे-जैसे विज्ञान का महत्व बढ़ा है, वैसे-वैसे विज्ञान के क्षेत्र में अनुवाद की आवश्यकता भी बढ़ी

है। विज्ञान की भाषा को 'सार्वभौमिक भाषा' कहा जाता है क्योंकि वैज्ञानिक सूचनाओं का आधार तथ्य एवं प्रमाण होते हैं। विज्ञान के अंतर्गत अनेक विषय शामिल हैं। जैसे भौतिकी, रसायन विज्ञान, वनस्पति विज्ञान, प्राणिविज्ञान, भू-विज्ञान, अभियांत्रिकी, आयुर्विज्ञान आदि। भारत में वैज्ञानिक अनुवाद के स्तर दो हैं – भारतीय भाषाओं में अंग्रेजी से अनुवाद; और विभिन्न विदेशी भाषाओं से अंग्रेजी में अनुवाद। आज भारत में विज्ञान के क्षेत्र में अध्ययन और अनुसंधान की मूल भाषा अंग्रेजी है। शिक्षा के क्षेत्र में भी स्नातकोत्तर विज्ञान शिक्षा की भाषा अंग्रेजी ही है। केवल स्कूली शिक्षा एवं स्नातक स्तरीय शिक्षा भारतीय भाषाओं में है। प्रशासनिक प्रोत्साहन न मिलने के बावजूद हिंदी में प्रौविज्ञान में बहुत लिखा गया है। 1998 तक केवल 13 भारतीय भाषाओं में प्रौविज्ञान विषयक लगभग 25,000 पुस्तकें एवं हिंदी में 2000 पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी थीं, और 1998 के बाद इस प्रकाशन संख्या में वृद्धि हुई है।[3] वैज्ञानिक और तकनीकी ग्रंथ के अनुवाद के क्षेत्र में पंत नगर कृषि विश्वविद्यालय का पाठ्य-पुस्तक वाला प्रयोग भी स्वीकार करने योग्य है। जैसा कि सभी जानते हैं कि, उस कृषि विश्वविद्यालय में कृषि एवं पशु-पालन से संबंधित उपाधि-स्तरीय पाठ्यक्रम हिंदी माध्यम से चलता है। इसके लिए उन्हें हिंदी में पाठ्य-पुस्तकें तैयार करनी पड़ी हैं। अब भी ये तैयार की जा रही है।[4]

वस्तुतः आज का युग विज्ञान एवं तकनीक का युग है; विज्ञान के क्षेत्र में निरंतर उन्नति हो रही है। विज्ञान की स्थापनाओं एवं निष्कर्षों को अंग्रेजी एवं अन्य विश्व की भाषाओं में अनूदित किया जा रहा है, किंतु हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषाओं के संदर्भ में अभाव ही है। आज वैज्ञानिकों एवं प्रौद्योगिकी के उन विशेषज्ञों की आवश्यकता है, जो अपना भाषण भारतीय भाषाओं में दें। संपूर्ण राष्ट्र की उन्नति एवं एकता के लिए वैज्ञानिक विषयों का हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषाओं में अनुवाद होना आवश्यक है, जिसके लिए प्रशासन को प्रयास करने होंगे। इससे राष्ट्रीय एकता और भी सशक्त हो सकेगी।

4. वाणिज्यिक अनुवाद एवं राष्ट्रीय एकता : कोई भी देश यदि आर्थिक दृष्टि से संपन्न है, तो उसे शक्तिशाली देश माना जाता है। आज 21वीं सदी में बाज़ारवाद, औद्योगीकरण, लघु-कुटीर उद्योगों के विकास से वाणिज्य और व्यापार की भाषा का भी संवर्द्धन हो रहा है। वाणिज्य और व्यापार की भाषा के संवर्द्धन के साथ-साथ वर्तमान समय में अनुवाद की माँग और महत्ता दोनों ही बढ़ी हैं। वाणिज्यिक साहित्य के अंतर्गत वाणिज्य, व्यापार, बैंक, बीमा, विज्ञापन, लेखा, क्रय-विक्रय आदि आते हैं। इन सबकी शब्दावली और वाक्यों की संरचना को लक्ष्य भाषा में प्रस्तुत करते समय अनुवादक का लक्ष्य भाषा में अधिकार होने के साथ-साथ विषय का विशेषज्ञ होना भी आवश्यक है।

वाणिज्यिक साहित्य की भाषा प्रायः तकनीकी, अर्द्ध-तकनीकी होती है। बाजार तीन प्रकार के माने गए हैं – वस्तु बाजार, स्कंध बाजार और मुद्रा बाजार। इन सभी बाजारों की सूचनाओं के विभिन्न भाषाओं में अनुवाद से देश के राज्यों के विभिन्न भाषा-भाषी लोग लाभान्वित होंगे, एक-दूसरे राज्यों से व्यापारिक सहयोग मजबूत होगा और राष्ट्रीय एकता को बल मिलेगा।

वाणिज्यिक साहित्य के अंतर्गत एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है – 'बैंक'। आज बैंकों में हिंदी के साथ-साथ अन्य क्षेत्रीय भाषाओं के प्रति रुचि एवं सम्मान के माहौल को सदैव बरकरार रखने की दिशा में भी महत्वपूर्ण कदम उठाए जा रहे हैं। ग्राहक की भाषा में अगर बैंक का कार्य किया जाए तो कहीं अधिक प्रगति की जा सकती है। विभिन्न राज्यों में ग्रामीण इलाकों में तथा अंचलों में बैंकिग व्यवहार से संबद्ध समस्त सामग्री (पत्र, परिपत्र, चैक-बुक, प्रचार सामग्री, पास बुक आदि) का संबद्ध क्षेत्रीय भाषा में अनुवाद उपलब्ध कराया जाना राष्ट्रीय एकीकरण की दिशा में सार्थक सिद्ध होगा।

वाणिज्यिक अनुवाद की उपादेयता एवं महत्व के संदर्भ में डॉ. बालेंदु शेखर तिवारी का कथन है – विज्ञप्तियों, अनुदेशों, पत्रों, देयकों, विपणन के माध्यमों, यातायात के संसाधनों, व्यापार की गतिविधियों आदि में अनुवाद की उपादेयता से भला कौन इंकार कर सकता है? निजी और सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों से लेकर दैनिक बाजार तक एवं शेयर बाजार से लेकर तमाम वित्तीय संस्थाओं तक जिस व्यावसायिक भाषा का विस्तार है, उसकी सम्यक प्रयुक्ति में अनुवाद की अप्रतिम भूमिका रहती है।[5] इस प्रकार कहा जा सकता है कि वाणिज्यिक साहित्य के अनुवाद के माध्यम से विभिन्न ग्रामों एवं राज्यों के स्तर पर संबंध स्थापित करता है, जिसके परिणामस्वरूप राष्ट्रीय एकता भी मजबूत होती है।

5. भाषा शिक्षण में अनुवाद एवं राष्ट्रीय एकता : भाषा-शिक्षण का सदैव कोई न कोई महत्वपूर्ण प्रयोजन अवश्य होता है। भाषा शिक्षण, शिक्षार्थी-सापेक्ष होता है। वर्तमान समय में प्रत्येक मनुष्य के लिए यह आवश्यक हो गया है कि उसे अपनी मातृभाषा के अतिरिक्त कम से कम एक अन्य भाषा का ज्ञान हो। भाषा शिक्षण के लिए 'प्रत्यक्ष विधि' को सर्वश्रेष्ठ माना गया है। प्रो. कृष्ण कुमार गोस्वामी इस विधि को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि – ''प्रत्यक्ष विधि सर्वाधिक श्रेष्ठ मानी गई है। इसमें मातृभाषा को मध्यस्थ बनाए बिना शिक्षार्थी को अन्य भाषा सिखाई जाती है। इसमें मातृभाषा की सहायता नहीं ली जाती और शिक्षार्थी सीखी जाने वाली भाषा के सीधे संपर्क में आकर मौखिक अभ्यास के द्वारा भाषा सीखता है। शिक्षार्थी को ड्रिल के द्वारा लक्ष्य भाषा की संरचनाओं का अभ्यास कराया जाता है। वास्तव में वाक्यों को बार-बार सुनना, उनका अभ्यास करना

और उन्हें आदत के रूप में ढाल लेना प्रत्यक्ष विधि है।"[6] इस प्रकार भाषा का शिक्षण कर व्यक्ति अनुवाद के माध्यम से अपनी सभी जिज्ञासाओं को शांत करता है। अन्य भाषा को कोई व्यक्ति 'संपर्क भाषा' के रूप में सीखता है तो कोई अपनी रुचि के लिए सीखता है, कोई जीवन में आर्थिक संपन्नता अर्थात् व्यवसाय के लिए सीखता है तो कोई दूसरी भाषा में रचित साहित्य को जानने के लिए, कोई तुलनात्मक साहित्य के अध्ययन के लिए सीखता है, और कोई ज्ञान-विज्ञान की नई-नई जानकारियों को जानने के लिए भाषा को सीखता है। भाषा शिक्षण के पश्चात् व्यक्ति अनुवाद कार्य मे प्रवृत्त होता है। आज ज्ञान-विज्ञान की हजारों पुस्तकों को हम केवल अनुवाद के माध्यम से ही पढ़ पाते हैं। उसी के माध्यम से हम देश, संस्कृति और ज्ञान-विज्ञान से जुड़ते हैं। भाषाई संस्कार का विकास भी इसी से संभव हो पाता है।

यदि किसी राष्ट्र में एक-भाषी व्यवस्था है तो केंद्र से लेकर छोटी इकाई तक केवल एक ही भाषा का प्रयोग शिक्षा, व्यापार, राजनीति, जनसंचार, प्रशासन आदि में होगा और वहाँ प्रांतीय भाषा का कोई महत्व नहीं होगा। इसके विपरीत, जहाँ किसी राष्ट्र में बहुभाषा-भाषी व्यवस्था है तो वहाँ सरकार अनेक स्तरों पर अनेक भाषाओं की व्यवस्था करती है। भारत बहु-भाषा देश है। भारत के संविधान में 22 भाषाओं को शामिल किया गया है। व्यक्ति अनुवाद के द्वारा ही राष्ट्र की भाषाओं में निहित अमूल्य जानकारियों से अवगत हो पाता है और इस प्रकार कहा जा सकता है कि भाषा शिक्षण में अनुवाद राष्ट्र की एकता का भी परिचायक है। डॉ. नारायणदत्त पालीवाल अपनी पुस्तक 'आधुनिक हिंदी का प्रयोग' में विभिन्न भाषाओं में निहित एकता के संदर्भ में कहते हैं "...हमारे देश में कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक तथा गुजरात से लेकर नागालैंड तक अनेक भाषाएँ, उपभाषाएँ, बोलियाँ तथा उपबोलियाँ बोली जाती हैं। इन भाषाओं एवं बोलियों में विभिन्नता के होते हुए भी एकता के दर्शन होते हैं। प्राचीनकाल से ही भावनात्मक एकता के संदेश के साथ-साथ भारतीय साहित्य में देश की सांस्कृतिक गरिमा, यहाँ की सभ्यता, यहाँ के आदर्श और जीवन के शाश्वत मूल्यों को समान रूप से वाणी मिली है। यही कारण है कि सभी भारतीय भाषाएँ भावनाओं और विचारों की अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में इस धरती पर सांस्कृतिक एकता की पावनगंगा प्रवाहित करती हैं।"

6. सामाजिक-सांस्कृतिक अनुवाद एवं राष्ट्रीय एकता : 'संस्कृति' शब्द की व्युत्पत्ति के मूल में है – संस्कार और भूमि, जलवायु के अनुकूल आचार-विचार, कार्यकलाप, जीवन-शैली और जीवन दर्शन से गृहीत प्रभाव। यही घटक समन्वित रूप से एक देश की संस्कृति को दूसरी देश की संस्कृति से अलग पहचान प्रदान करते हैं।[7] आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी संस्कृति के विषय में कहते हैं कि आर्थिक व्यवस्था, संघटन, नैतिक

परंपरा और सौंदर्य-बोध को तीव्रतर करने की योजना में सभ्यता के चार स्तंभ हैं। इन सबके सम्मिलित प्रभाव से संस्कृति बनती हैं।[8] सामाजिक-सांस्कृतिक विषयों से तात्पर्य उन विषयों से है, जिनका संबंध मानविकी से है। इतिहास, राजनीति विज्ञान, अर्थशास्त्र, मनोविज्ञान, धर्म, नीति, दर्शन आदि ऐसे ही विषय हैं। भारत जैसे बहुभाषी, बहुजातीय देश में अनेक संस्कृतियों, धर्मों एवं आचारों-विचारों का समन्वित रूप मिलता है। जिस प्रकार गहन-गंभीर, विशाल सागर अनेक नदियों के जल को साथ लेकर चलता है, उसी प्रकार एक देश की संस्कृति में अनेक प्रादेशिक संस्कृतियों का मिश्रण होता है। हिंदी एवं अन्य प्रादेशिक सामाजिक-सांस्कृतिक अनुवाद के माध्यम से व्यक्ति विभिन्न संस्कृतियों के बारे में जानता है। भारतीय संस्कृति में अनेकता में एकता के दर्शन होते हैं और यह राष्ट्रीय एकता का ही परिचायक भी है। सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ में कुछ महत्वपूर्ण अनुवाद इस प्रकार हैं – अज्ञेय द्वारा अनूदित रवींद्रनाथ, रोम्यां रोलां। प्रेमचंद द्वारा अनूदित टालस्टाय, शेख सादी, नागार्जुन-मेघदूत, माखनलाल चतुर्वेदी द्वारा 'कृष्णार्जुन युद्ध', महादेवी द्वारा ऋग्वेद, कालिदास के अंश आदि। इस प्रकार कहा जा सकता है कि सामाजिक-सांस्कृतिक अनुवाद के माध्यम से विभिन्न संस्कृतियों का प्रसार होता है और सामाजिक सद्‌भावना को बल मिलता है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि राष्ट्रीय एकता के संदर्भ में अनुवाद अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। 'एकता' ही वह तत्व है, जिसके माध्यम से कोई भी राष्ट्र उन्नति के चरम शिखर तक पहुँचता है। आज अनुवाद एक स्वतंत्र विधा एवं जीवनोपयोगी विद्या के रूप में सामने आया है। अनुवाद जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में समाहित है। अनुवाद की महत्ता इस बात से भी स्पष्ट हो जाती है कि सरकार द्वारा 'राष्ट्रीय अनुवाद मिशन' की स्थापना की गई, जिसका उद्देश्य 'अनुवाद-कार्य' को बढ़ावा देना है। अनुवाद के माध्यम से ही भारतीय संदर्भ में वसुधैव कुटुंबकम् की अवधारणा सार्थक सिद्ध हो रही है। 'साहित्यिक अनुवाद' के माध्यम से मनुष्य किसी भी प्रादेशिक अथवा विदेशी भाषा के साहित्य से परिचय प्राप्त करता है, तो 'संचार माध्यमों में अनुवाद' के माध्यम से वह समस्त राष्ट्रीय, आर्थिक, व्यापारिक, सामाजिक-सांस्कृतिक, सूचनाएँ प्राप्त करता है और अपना मनोरंजन भी करता है। 'वैज्ञानिक एवं तकनीकी अनुवाद' के माध्यम से व्यक्ति देश-विदेश में हो रही वैज्ञानिक गतिविधियों से रूबरू होता है। 'वाणिज्यिक अनुवाद' के माध्यम से व्यक्ति सभी राज्यों-राष्ट्रों में हो रही व्यापारिक हलचलों की जानकारी प्राप्त करता है और राज्यों-राष्ट्रों से व्यापारिक संबंध भी स्थापित होते हैं। 'भाषा-शिक्षण में अनुवाद' के माध्यम से व्यक्ति अनेक भाषाओं में निहित ज्ञान से लाभान्वित होता है और 'सामाजिक-सांस्कृतिक अनुवाद' से व्यक्ति विभिन्न प्रादेशिक-विदेशी समाजों एवं संस्कृतियों की जानकारी प्राप्त करता है। यह सब

देश की राष्ट्रीय एकता का ही परिचायक है। इसीलिए यह कहा जा सकता है कि 'अनुवाद' देश को राष्ट्रीय एकता के सूत्रों में बाँधता है। राष्ट्रीय एकता की इच्छा, और राष्ट्र की उन्नति की कामना, राष्ट्रभाषा प्रेम को विकसित करने से ही होती है। यही कारण है कि भारतेंदु हरिश्चंद्र को कहना पड़ा था :

निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल।
बिनु निज भाषा ज्ञान के, मिटत न हिय को सूल।।

किंतु ''निजभाषा'' की उन्नति में अनुवाद की भूमिका भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। आज भाषा के आधुनिकीकरण की प्रक्रिया पर जब हम विचार करते हैं तो पाते हैं कि वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग ने जो लगभग नौ लाख पारिभाषिक शब्द हिंदी में बनाए हैं, वह सब विदेशी भाषाओं के अवधारणात्मक शब्दों के समतुल्य हिंदी शब्द हैं, जो अंग्रेजी भाषा से हिंदी में गढ़े गए हैं। ज्ञान-विज्ञान के प्रचार-प्रसार तथा प्रयोग-अनुप्रयोग के लिए इन शब्दों का राष्ट्रीय स्तर पर एकरूपता और एकता की दृष्टि से उल्लेखनीय महत्त्व है। अतः अनुवाद हमें हमारी राष्ट्रभाषाओं के प्रति प्रेम और दायित्व निर्वाह की प्रेरणा भी देता है।

❑

संदर्भ

1-2. मानवमूल्य-परक शब्दावली का विश्वकोश; संपादक डॉ. धर्मपाल मैनी, पृष्ठ 154 एवं 1542
3. स्मारिका – सातवाँ विश्व हिंदी सम्मेलन; विश्वमोहन तिवारी, पृष्ठ 145
4. अनुवाद शतक (भाग दो), प्रधान-संपादक – नीता गुप्ता, संपादक – डॉ. पूरनचंद टंडन, पृष्ठ 72
5. अनुवाद-विज्ञान; संपादक – डॉ. बालेंदु शेखर तिवारी, पृ. 24-25
6. अनुवाद विज्ञान की भूमिका; कृष्ण कुमार गोस्वामी, पृष्ठ 396
7. 'अनुवाद' पत्रिका, अंक 133, भारतीय अनुवाद परिषद, नई दिल्ली, अक्तूबर-दिसंबर, 2007, पृष्ठ 13
8. अशोक के फूल; हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ 81

डॉ. देवेंद्र कुमार देवेश

अनुवाद के सिद्धांत : पाश्चात्य दृष्टिकोण

अनुवाद की पाश्चात्य सैद्धांतिक चिंतन परंपरा का प्रस्थान-बिंदु ई. पू. पहली शताब्दी का रोमन युग है। यह वह समय था जब रोमन दार्शनिक सिसरो (106-43 ई. पू.) तथा रोमन कवि होरेस (65-8 ई. पू.) ने शब्दानुगामी और अर्थानुगामी अनुवाद के अंतर को रेखांकित किया तथा साहित्यिक रचनाओं के लिए अर्थानुगामी अनुवाद को महत्व दिया। होरेस ने कहा कि मूलनिष्ठ अनुवादक को शब्दानुवाद के लिए चिंतित नहीं होना चाहिए, बल्कि भावानुवाद करना चाहिए।[1] रोमन विद्वान् क्विंटिलियन (35-96 ई.) ने अनुवाद तथा समभाषी व्याख्यात्मक शब्दांतरण की उपयोगिता को लेखन एवं भाषण-कला के विकास के संदर्भ में देखा, जिसका मध्यकालीन यूरोप में व्यापक प्रसार हुआ। अनुवाद में अर्थानुगामिता के सिद्धांत को रोमन लेखक जाइस सिकंदस (62-112 ई.), संत जेरोम (345-419 ई), संत ऑगस्टाइन (354-430 ई.), अंग्रेज विद्वान रोजन बेकन (1220-92 ई.), जॉन वाइक्लिफ (1330-84 ई.), अंग्रेजी अनुवादक जॉन ऑफ त्रिविसा (1362-1412 ई.), इतालवी विद्वान-अनुवादक लियोनार्दो ब्रूनी (1374-1444 ई.), डच भाषाशास्त्री देसिदेरियस इरेस्मस (1466-1536 ई.), अंग्रेज विद्वान् टॉमस मूर (1477-1536 ई.), स्पानी विद्वान् जुआन लुइस (1492-1549 ई.), विलियम टिण्ड्ल (1494-1536 ई.) और जर्मन विद्वान मार्टिन लूथर (1483-1546 ई.) ने प्रश्रय और समर्थन दिया।

मध्यकालीन यूरोप के आरंभिक सिद्धांतकारों में फ्रांसीसी विद्वान् एतिने दोलेत (1509-1546 ई.) ने 1540 ई. में प्रकाशित अपने एक निबंध में अनुवाद-सिद्धांत को निम्नांकित पाँच सूत्रों[2] में अभिव्यक्त किया :

(1) अनुवादक को मूल लेखक के भाव और उद्देश्य को अच्छी तरह समझना चाहिए, तथापि वह दुर्बोधता को स्पष्ट करने के लिए स्वतंत्र है।

(2) अनुवादक को स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए।

(3) अनुवादक को शब्द-प्रतिशब्द अनुवाद से बचना चाहिए।
(4) अनुवादक को आम बोलचाल की भाषा का प्रयोग करना चाहिए।
(5) अनुवादक को सटीक अभिव्यक्ति के लिए उपयुक्त शब्दों और शब्द-योजना का चयन करना चाहिए।

परवर्ती विद्वानों में फ्रांसीसी अनुवादक जाँ द ब्रीचे (1514-83 ई.), फ्रांसीसी कवि एवं व्याकरणशास्त्री जैकुइस पैलितियर (1517-82 ई.), फ्रांसीसी काव्यशास्त्री जॉकिम दु बेले (1522-60 ई.), अंग्रेज विद्वान फिलेमन हॉलैंड (1552-1637 ई.), अंग्रेजी कवि-नाटककार जॉर्ज चैपमन (1559-1634 ई.), फ्रांसीसी अनुवादक निकोलस पेरोट (1606-64 ई.), फ्रांसीसी धर्मशास्त्री एवं अनुवादक एंटोइन लेमेस्ट्र (1608-50 ई.), फ्रांसीसी अनुवादक गास्पर्ड द तेंदे (1618-97 ई.), सर जॉन डेनहम (1615-69 ई.), अंग्रेज लेखक एडवर्ड शेरबर्न (1618-1702 ई.), अंग्रेजी कवि अब्राहम काउली (1618-67 ई.), फ्रांसीसी शिक्षाशास्त्री पितरस दानियल (1630-1721 ई.), अंग्रेजी कवि जॉन ड्राइडन (1631-1700 ई.), अंग्रेजी कवि अर्ल रस्कोमन (1633-85 ई.), फ्रांसीसी भाषाशास्त्री अन्ने डेजियर (1647-1720 ई.), अंग्रेजी अनुवादक लॉरेंस एकॉर्ड (1670-1730 ई.), फ्रांसीसी आलोचक एंतोइन हॉदर (1672-1731 ई.), और अंग्रेजी कवि अलेक्जेंडर पोप (1688-1744) ने भी शब्दानुगामी अनुवाद की अपेक्षा अर्थानुगामी अनुवाद को श्रेयस्कर बताया। अनुवाद की अति-मूलनिष्ठता और अति-स्वतंत्रता के बीच सामंजस्य के सूत्र तलाशते हुए अंग्रेज विद्वान सैम्युअल जॉनसन (1709-84 ई.) ने कहा कि अनुवाद में मूल पाठ की अपेक्षा परिवर्धन के कारण उत्पन्न परिष्कृति का स्वागत किया जा सकता है, बशर्ते कि मूल पाठ की हानि न हो।

1789 ई. में *बाइबिल* के अनुवाद के इतिहास और सिद्धांतों पर पहला व्यवस्थित काम *गॉस्पेल* के अनुवाद (दो खंडों में) की भूमिका के रूप में सात सौ पृष्ठों के पहले खंड के रूप में प्रकाशित हुआ, जिसे कैंपबेल ने प्रस्तुत किया था। इसके पूर्व इस प्रकार का चिंतन इस विषय पर कहीं भी नहीं हुआ था। कैंपबेल ने पहले हुए *बाइबिल* के अनुवादों की सोदाहरण तथा गहराई से समीक्षा की थी और अच्छे अनुवाद के लिए तीन बातें[3] आवश्यक मानी थीं :
(1) मूल के कथ्य को अपरिवर्तित रूप में अनुवाद में संप्रेषित करना,
(2) लक्ष्य भाषा की प्रकृति के अनुरूप अपनी अभिव्यक्ति रखते हुए, यथासंभव मूल की आत्मा और शैली को अनुवाद में उतारना; तथा
(3) अनुवाद को यथासाध्य मौलिक लेखन जैसा रखना, ताकि वह स्वाभाविक और सहज प्रवाही हो।

लेकिन अनुवाद-सिद्धांत पर व्यवस्थित और स्वतंत्र रूप से विचार करने वाली पहली

पुस्तक *एस्से ऑन द प्रिंसिपल्स ऑफ ट्रांसलेशन* का प्रकाशन 1791 ई. में हुआ, जिसके लेखक थे स्कॉटिश विद्वान एलेक्जेंडर फ्रेजर टिटलर (1747-1814 ई.)। अब तक जो भी अनुवाद-सिद्धांत प्राप्त होते थे, वे अनुवादकों द्वारा ग्रंथों की भूमिका के ही रूप में थे और धार्मिक ग्रंथों के अनुवाद के संदर्भ में थे, लेकिन टिटलर ने अनुवाद-सिद्धांत को व्यापक संदर्भ देते हुए धर्मेतर कृतियों के अनुवाद विशेषकर काव्यानुवाद पर विचार किया। टिटलर ने अनुवाद-सिद्धांतों को तीन सूत्रों[4] में प्रस्तुत किया :

(1) अनुवाद में मूल का सारा भाव आ जाना चाहिए,

(2) अनुवाद की शैली और लेखन का ढंग मूल के जैसे हो; तथा

(3) अनुवाद में मूल रचना की समस्त सहजता और सरलता आनी चाहिए।

अठारहवीं-उन्नीसवीं शती के अन्य विद्वानों में प्रख्यात फ्रांसीसी दार्शनिक एवं लेखक-अनुवादक वाल्तेयर (1694-1778 ई.), फ्रांसीसी कथाकार-अनुवादक प्रिवोस्ट (1697-1763 ई), जर्मन आलोचक जॉन जैकब बॉदमेर (1698-1783 ई.) अंग्रेज लेखक-पत्रकार टॉमस गोर्डन (-1750 ई.), जर्मन काव्यशास्त्री जॉन क्रिस्टोफ गॉटशेड (1700-66 ई.), अंग्रेजी अनुवादक विलियम गुथ्री (1708-70 ई.), अंग्रेजी विद्वान फिलिप फ्रांसिस (1708-73 ई.), फ्रांसीसी काव्यशास्त्री चार्ल्स बैटेक्स (1713-80 ई.), फ्रांसीसी दार्शनिक अलेंबर्ट (1717-83 ई.), अंग्रेजी अनुवादक टॉमस फ्रैंकलिन (1721-84 ई.), अंग्रेजी कवि क्रिस्टोफर स्मार्ट (1722-71), अंग्रेजी अनुवादक विलियम कूपर (1731-1800 ई.), अंग्रेजी नाटककार जॉर्ज कोलमैन (1732-94 ई.), फ्रांसीसी अनुवादक पियरे ले टर्नर (1736-88 ई.), जोहान्न गाडफेल हर्डर (1744-1803 ई.), गेटे (1749-1832 ई.), अन्ने लुइस स्टाइल (1766-1817 ई.), जर्मन भाषाशास्त्री विल्हेम हंबोल्ट (1767-1845 ई.), जर्मन आलोचक ए. डब्ल्यू. श्लेगल (1767-1845 ई.), जर्मन दार्शनिक फ्रेडरिक श्लिर्मशर (1768-1834 ई.), ब्रिटिश अनुवादक जॉन हूखाम फ्रेरे (1769-1846 ई.), फ्रांसीसी कवि-अनुवादक जैकुइ डैलिली (1783-1813 ई.), अंग्रेजी कवि-विचारक शेली (1792-1822 ई.), स्कॉटिश विद्वान टॉमस कार्लाइल (1795-1881 ई.), फ्रांसीसी कवि-कथाकार विक्टर ह्यूगो (1802-85 ई.), लोंगफेला (1807-81 ई.) अंग्रेजी कवि-अनुवादक एडवर्ड फिट्जेराल्ड (1806-83 ई.), अंग्रेजी कवि-आलोचक मैथ्यू ऑर्नल्ड (1822-88 ई.), अंग्रेजी कवि-कलाकार दाँते गैब्रियाल रोसेटी (1828-82 ई.) तथा जर्मन भाषाशास्त्री मॉलेन्ड्रॉफ (1848-1931 ई.) ने भी अपने विमर्शों से अनुवाद-सिद्धांत की विकास-यात्रा को समृद्ध किया। इनमें से अधिकांश अर्थानुगामी अनुवाद-पद्धति के ही पक्षधर थे और मूलनिष्ठता के साथ-साथ सरल-सहज अनुवाद के आग्रही थे।

आधुनिक भाषाविज्ञान का उदय यद्यपि बीसवीं शती के पूर्वार्ध में हुआ, परंतु अनुवाद-सिद्धांत की प्रासंगिकता की दृष्टि से उत्तरार्ध की अवधि ज्यादा महत्वपूर्ण है। इस अवधि में

भाषाविज्ञान से सुपरिचित अनुवादकों और भाषावैज्ञानिकों का ध्यान अनुवाद-सिद्धांत की ओर आकृष्ट हुआ। अब तक भाषाओं का अध्ययन ऐतिासिक दृष्टि से किया जाता था अर्थात् भाषा का उद्‌भव और विकास कैसे हुआ? विभिन्न कालखंडों में उसका क्या रूप रहा, उसमें कैसे परिवर्तन हुए और क्यों हुए, विभिन्न भाषाओं के आपस में क्या संबंध थे आदि। भाषा के इस प्रकार के अध्ययन को भाषाशास्त्र कहा जाता था। लेकिन हैलीडे द्वारा प्रस्तुत व्यवस्थित व्याकरण पद्धति ने भाषा में अर्थ तत्व को सर्वाधिक महत्वपूर्ण बना दिया और परिणामस्वरूप अनुवाद-प्रक्रिया को समझने-समझाने का एक नया माध्यम और तकनीक सामने आए।

''इस क्रम में संरचनात्मक भाषाविज्ञान का विकास, अर्थविज्ञान की प्रगति, संप्रेषण-सिद्धांत एवं भाषाविज्ञान का समन्वय; तथा अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान की विभिन्न शाखाओं; समाजभाषा विज्ञान, शैलीविज्ञान, मनोभाषाविज्ञान, प्रोक्ति विश्लेषण का विकास तथा संकेतविज्ञान, विशेषतः पाठ संकेतविज्ञान का उदय ऐसी घटनाएँ हैं, जो अनुवाद-सिद्धांत को पुष्ट तथा विकसित करने की दृष्टि से महत्वपूर्ण रहीं।''[5]

बीसवीं शती के चार महत्वपूर्ण अनुवाद चिंतकों और उनके सिद्धांतों का उल्लेख यहाँ समीचीन होगा। ये चिंतक हैं : थियोडोर सेवरी, यूजीन ए. नाइडा, जे.सी. कैटफोर्ड और पीटर न्यूमार्क। थियोडोर सेवरी ने अनुवाद-कला पर विस्तार से विचार करते हुए बताया कि अनुवाद के अधिकांश सिद्धांत परस्पर विरोधी हैं, क्योंकि विचारकों में मतैक्य नहीं है। सभी प्रचलित अनुवाद सिद्धांतों को उन्होंने संक्षेप में निम्नांकित बारह सूत्रों[6] में प्रस्तुत करते हुए यह कहा कि इनमें से प्रत्येक सिद्धांत का अपना महत्व है और इसलिए कोई मध्यम मार्ग अपनाना ही श्रेयस्कर होगा :

(1) अनुवाद मूल के शब्दों पर आधारित होना चाहिए।
(2) अनुवाद मूल के भाव का ही होना चाहिए।
(3) अनुवाद मौलिक रचना जैसा लगना चाहिए।
(4) अनुवाद अनुवाद लगना चाहिए।
(5) अनुवाद में मूल की शैली प्रतिबिंबित होनी चाहिए।
(6) अनुवाद की शैली अनुवादक की अपनी शैली होनी चाहिए।
(7) अनुवाद मूल की समसामयिक रचना जैसा लगना चाहिए।
(8) अनुवाद अनुवादक की समसामयिक रचना जैसा होना चाहिए।
(9) अनुवाद में कुछ जोड़ा या घटाया जा सकता है।
(10) अनुवाद में मूल से कुछ भी घटाया या बढ़ाया जा नहीं जा सकता।
(11) कविता का अनुवाद पद्य में हो।

नाइडा ने अनुवाद-सिद्धांत का एक नया आयाम दिया। उन्होंने चॉम्स्की के रूपांतरण-व्याकरण (Tranformational Grammar) का आश्रय लेकर स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा की काव्य-रचना के विभिन्न रूपांतरों को समझाने का प्रयत्न किया। उन्होंने विभिन्न बोलियों-भाषाओं में हुए *बाइबिल* के अनुवादों का विश्लेषण करते हुए कहा कि यद्यपि स्रोत भाषा के रूपकों, अलंकारों, प्रतीकों, रीति-रिवाजों और स्थानिक परिवेश की लक्ष्य भाषा में पूरी तरह समतुल्य अभिव्यक्ति नहीं हो सकती, तथापि स्रोत भाषा का अर्थ लक्ष्य भाषा के निकटतम पहुँच सके, इसी में अनुवाद और अनुवादक की सफलता होती है। उन्होंने भाषा की चर्चा में पाठक को भी एक आवश्यक तत्व माना और इस बात पर जोर दिया कि लक्ष्य पाठक को ध्यान में रखकर ही अनुवाद किया जाना चाहिए।

कैटफोर्ड स्रोत भाषा के पाठ को लक्ष्य भाषा की व्याकरणिक संरचना में बदलने का आग्रह करते हैं। उन्होंने शुद्ध भाषावैज्ञानिक आधार पर अनुवाद के प्रारूपों का निर्धारण किया, अनुवाद-परिवृत्ति का भाषावैज्ञानिक विवरण दिया और अनुवाद की सीमाओं पर विचार किया। उनका मानना है कि अनुवाद भाषाओं पर निष्पादित एक संक्रिया है, एक भाषापाठ को अन्य भाषापाठ में प्रतिस्थापित करने का प्रक्रम है। अतः अनुवाद-सिद्धांत किसी न किसी सामान्य भाषिक सिद्धांत पर ही आधारित होना चाहिए।

न्यूमार्क ने पाठ प्रारूप-भेद के अनुरूप विशिष्ट अनुवाद-प्रणाली की संकल्पना प्रस्तुत की। अनुवाद-सिद्धांत को उनका महत्वपूर्ण योगदान है – अनुवाद की अर्थकेंद्रित (मूल भाषापाठ केंद्रित) तथा संप्रेषण केंद्रित (अनुवाद के पाठक पर केंद्रित) प्रणाली की संकल्पना। उन्होंने पाठ विश्लेषण, संदेशांतरण तथा लक्ष्य भाषा में अभिव्यक्ति की स्थितियों से संबंधित अनेक अनुवाद-सूत्र प्रस्तुत किए। न्यूमार्क का मानना है कि किसी भाषा में अभिव्यक्त कोई भी भाव किसी अन्य भाषा में अननूद्य नहीं है तथा अनुवाद संबंधी समस्याएँ अनुवाद-सिद्धांत का हृदय हैं, जो हरेक अनुवादक के लिए भिन्न होती हैं। उनके अनुसार, ''अनुवाद-सिद्धांत का काम क्या है, प्रथमतः अनुवाद संबंधी समस्या (समस्या नहीं : अनुवाद-सिद्धांत नहीं) की पहचान एवं परिभाषा; द्वितीय, उन सभी घटकों का रेखांकन, जो समस्या के समाधान में सहायक हो सकते हैं; तृतीय, सभी संभावित अनुवाद-प्रक्रियाओं की सूची तैयार करना; और अंततः सबसे ज्यादा उपयुक्त अनुवाद-प्रक्रिया के माध्यम से सटीक अनुवाद।''[7]

बीसवीं शताब्दी में अनुवाद के अन्य पाश्चात्य सिद्धांतकारों में बेनेदेत्तो क्रोचे, एच. बेलॉक, मैटिट्शन, जे.आर. फर्थ, के. बुलर, जी. हेलबिग, एम.ए.के. हैलीडे, डब्ल्यू. ड्रेसलर, ब्यूग्रांडे, आंद्रे लेफेवेरे, रोजर बेल, डब्ल्यू. कोलर, डब्ल्यू विल्स, जॉन बिगनेट, रेनर शुल्टे, सुसान बैसनेट मोना बेकर आदि महत्वपूर्ण हैं।

अनुवाद के भारतीय सिद्धांतकारों में सर्वश्री आर. रघुनाथ राव, वासुदेवनंदन प्रसाद,

डॉ. भोलानाथ तिवारी, डी.पी. पटनायक, प्रो. हरीश त्रिवेदी, सर्वश्री सुरेश कुमार, सुजीत मुखर्जी, प्रो. रवींद्रनाथ श्रीवास्तव, प्रो. जी. गोपीनाथन, प्रो. रीतारानी पालीवाल, अवधेश मोहन गुप्त, एन.ई. विश्वनाथ अय्यर, डॉ. पूरनचंद टंडन, डॉ. कैलाशचंद्र भाटिया, प्रो. कृष्णकुमार गोस्वामी, डॉ. हरीश कुमार सेठी आदि के नाम लिए जा सकते हैं। इनमें से दो-चार को छोड़कर प्रायः सिद्धांतकारों ने यथासंभव भारतीय संदर्भों में पाश्चात्य सिद्धांतों की पुनर्व्याख्या करने का काम ही किया है। अनुवाद-सिद्धांत पर इनकी पुस्तकें अंग्रेजी अथवा हिंदी में उपलब्ध हैं।

❑

संदर्भ

1. Do not worry about rendering word for word, faithful translator, but render sense for sence. –Flaccus Quintus Horatius, quoted from Translation/History/Culture, edited by Andre Lefevere, 1992, p. 15.
2. (1) The Translator must fully understand the sense and meaning of the original author, although he is at liberty to clarify obscurities. (2) The translater should have a perfect knowledge of both SL and TL. (3) The translator sould avoid word for word renderings. (4) The Translator should use forms of speech in common use. (5) The translator should choose and order of words appropriately to produce the correct tone. Quoted from *Translation Studies.* McGuire Susan Bassnett, p. 54.
3. अनुवाद विज्ञान, डॉ. भोलानाथ तिवारी, 1989, पृष्ठ 199
4. (1) The translation should give a complete transcript of the ideas of the original work, (2) The style and manner of writing should be of the same character as that of the original, and (3) The translation should have all the ease of the original composition. अनुवाद : सिद्धांत एवं प्रयोग, डॉ. जी. गोपीनाथन, 1985, पृष्ठ 55 से उद्धृत।
5. अनुवाद सिद्धांत की रूपरेखा, डॉ. सुरेश कुमार, पृष्ठ 38
6. अनुवाद : सिद्धांत एवं प्रयोग, डॉ. जी. गोपीनाथन, पृष्ठ 58 से उद्धृत।
7. What translation theory does is, first, to identify and define a translation problem (no problem-no translation theory!); second, to indicate all the factors that have to be taken into account in solving the problem; third, to list all the posible translation procedures; finally, to recommend the most suitable translation procedure, plus the appropriate translation. *A textbook of Translation,* Peter Newmark, 1988, p. 9.

डॉ. प्रमोद कोवप्रत

अनुवाद के उपकरण

वर्तमान समय अनुवाद के लिए काफी अनुकूल है। विज्ञान और सूचना प्रौद्योगिकी की छलांग के साथ अनुवाद तथा अनुवादकों की माँग बढ़ती जा रही है। मीडिया इसमें सबसे महत्वपूर्ण क्षेत्र है। इसी परिप्रेक्ष्य में अनुवाद कार्य को हल्के काम की तरह नहीं ले सकते हैं। अनूदित पाठ को पढ़ने तथा देखने वालों की संख्या करोड़ों है। इसी संदर्भ में स्तरीयता तथा वैज्ञानिकता की बात आती है। सूचना क्रांति की शब्दावली में कहें तो अनुवाद एक प्रकार से ब्लू टूथ (blue tooth) डाटा ट्रांस्फर की प्रक्रिया है। अर्थात् कथ्य को बिना परिवर्तन के, दूसरे उपकरण (device) में अंतरित करना। यहाँ मोबाइल फोन है तो वहाँ भाषा है। सिर्फ यही अंतर है। भाषा-शिक्षण की सभी विधियाँ अनुवाद पर भी लागू हैं अर्थात् सुनना, बोलना, पढ़ना और लिखना (LSRW)। एक अच्छा पाठक ही अच्छा अनुवादक बन सकता है। अध्ययन की नई-नई शाखाएँ विकसित होने के साथ नए-नए शब्दों एवं संकेतों की जरूरत पड़ती है। अनुवादक अपनी शब्द संपदा में से उन्हें खोजता है। लेकिन इसकी भी एक सीमा होती है। इसलिए उसे बाहरी साधनों का सहारा लेना पड़ जाता है। नए-नए शब्दों एवं विषयों को ग्रहण करने के साथ उसके लिए अपनी भाषा में नए शब्दों को ढूँढ़ना श्रम-साध्य काम है। ऐसे में मामा वरेरकर का यह कथन सार्थक लगता है कि लेखक होना आसान है, किंतु अनुवादक होना अत्यंत कठिन है। इस प्रसंग में अनुवाद के विभिन्न उपकरणों की चर्चा एवं प्रासंगिकता बढ़ जाती है। अनुवाद की गुणवत्ता एवं स्तरीयता के लिए इन सहायक साधनों का सहारा लेना अत्यंत अपेक्षित हो जाता है क्योंकि अनुवादक की स्मृति की भी एक सीमा है। ऐसे में कोश आदि अनुवाद के सार्थक सहायक साधन सिद्ध होते हैं। ये सहायक उपकरण कई प्रकार के होते हैं। अनुवाद के इन सहायक साधनों को मोटे तौर पर निम्नलिखित प्रकार से विभाजित कर सकते हैं :

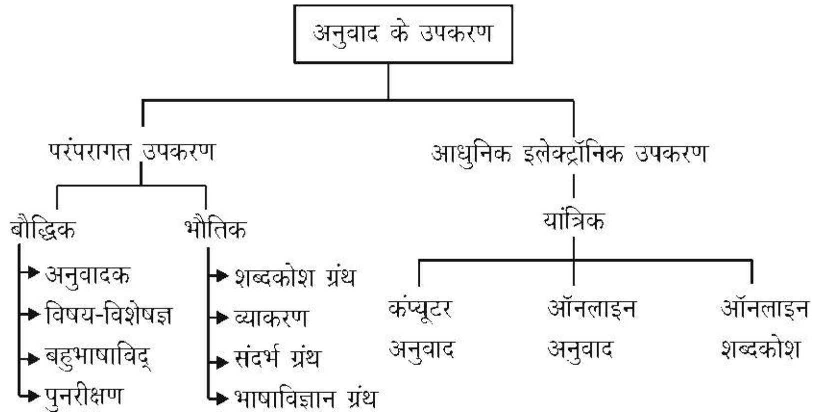

(1) **बौद्धिक उपकरण :**

अनुवाद के बौद्धिक उपकरणों के अंतर्गत अनुवादक, विषय विशेषज्ञ, बहुभाषाविद्; और पुनरीक्षक को शामिल किया जा सकता है।

(क) अनुवादक : चूँकि अनुवादक कोई वस्तु नहीं है, तो भी अनुवाद कार्य का सबसे सशक्त उपकरण स्वयं अनुवादक है। उसकी योग्यता ही अनुवाद की सफलता की कुँजी है। रोजर टी. बेल नामक विद्वान ने Translation and Translating नामक ग्रंथ में अनुवादक के लिए आवश्यक प्रमुख चार गुण बताए हैं। ये हैं :

- **(i)** **व्याकरणपरक :** शब्द, शब्द-रचना, आचरण, वाक्य संरचना, मुहावरों तथा विशेष प्रयोगों को समझने की क्षमता आदि कई व्याकरणपरक ज्ञान इसमें आ जाते हैं।
- **(ii)** **समाज भाषाविज्ञानपरक :** विषय, वक्ता की अवस्था एवं परिवेश, बोलने का उद्देश्य तथा मनोविज्ञान आदि को समझने और उसे पुनःसृजित करने की दक्षता।
- **(iii)** **बातचीतपरक :** विभिन्न प्रकार के मुहावरे तथा लोकोक्तियों को समझने की क्षमता, आंचलिक भाषा की पकड़ तथा विभिन्न प्रांतीय शैलियों को ग्रहण करने की क्षमता अनुवादक में होनी चाहिए।
- **(iv)** **तकनीकी दक्षता :** संप्रेषण को बेहतर बनाने तथा उसकी कमियों को दूर करने की तकनीक में प्रवीणता प्राप्त करना अनुवादक के लिए आवश्यक है।

उपर्युक्त चारों गुणों के अलावा अनुवादक के लिए कई अन्य भी गुण जरूरी हैं, क्योंकि वही अनुवाद कार्य का सबसे प्रथम बौद्धिक उपकरण है। उनमें से कुछ आवश्यक गुण इस प्रकार हैं :

- सृजनात्मक संवेदनशीलता एवं पुनःसृजन की क्षमता।
- सृजनात्मक प्रतिभा।
- स्रोत एवं लक्ष्य भाषाओं पर पर्याप्त अधिकार।
- विषय का आवश्यक ज्ञान।
- स्रोत एवं लक्ष्य भाषाओं की संस्कृति का बोध।
- मूल रचना के साथ तादात्म्य प्राप्त करने की दक्षता या सहानुभूति।
- अच्छी शैली की जानकारी।
- सहजता बरकरार रखने की क्षमता।
- संप्रेषणीयता को सफल बनाने की क्षमता।
- मूलनिष्ठ होते हुए भी पुनःसृजन में स्वतंत्रता तथा सृजनात्मकता को बरकरार रखने की संवेदना।

(ख) **विषय विशेषज्ञ :** अनुवादक को कई प्रकार की सामग्रियों का अनुवाद करना पड़ता है। लेकिन उसकी सीमा यह है कि वह सर्व-विषयों का ज्ञाता नहीं हो सकता। ऐसे में विशेषकर साहित्येतर या सूचना-प्रधान साहित्य के अनुवाद में विषय विशेषज्ञ का सहारा लेना पड़ता है। कंप्यूटर, जैव प्रौद्योगिकी, दर्शन, पत्रकारिता, गणित, मानविकी, सामाजिक विज्ञान, मनोविज्ञान जैसे विषयों के अनुवाद में भावों की बारीकियों को समझने के लिए संबंधित विषय के विद्वानों से सलाह-मशविरा करके अच्छा अनुवाद संभव है।

(ग) **बहुभाषाविद् :** विषय विशेषज्ञ की तरह बहुभाषाविद् विद्वान भी एक महत्वपूर्ण सहायक साधन है। अगर हमारे पास ऐसे बहुभाषाविद् विद्वान की सेवाएँ उपलब्ध हैं तो हमें अनुवाद-कार्य करते समय कोश-ग्रंथों की जरूरत नहीं पड़ती है। शब्द, पर्याय, मुहावरा, लोकोक्ति, भाषा-संरचना तथा व्याकरण आदि से संबंधित तुरंत जानकारी के लिए वह हमारे लिए सहायक हो सकता है। तब दो या तीन भाषाओं को जानना आवश्यक हो जाता है। इससे समय की बचत भी होती है क्योंकि कोशों में पर्याय ढूँढ़ने में काफी समय गँवा दिया जाता है। फोन से भी ऐसा परामर्श लेना आसान है, क्योंकि सबके हाथों में मोबाइल फोन है।

(घ) **पुनरीक्षक :** अनुवाद प्रक्रिया की सफलता में पुनरीक्षक की भूमिका महत्वपूर्ण है। पुनरीक्षण अनवाद-कर्म को फिर से देखने तथा गलतियों को सुधारने की प्रक्रिया है। इसलिए अनुवादक की कमियों पर ध्यान देने वाले पुनरीक्षक की बौद्धिक भूमिका अनुवाद कार्य में काफी महत्व रखती है।

(2) भौतिक उपकरण :

अनुवाद के भौतिक उपकरणों में प्रमुख रूप से कोश ग्रंथ, व्याकरण ग्रंथ, संदर्भ ग्रंथ, भाषाविज्ञान के ग्रंथ आदि आते हैं। जैसे :

(क) **कोश-ग्रंथ** : अनुवाद कार्य में कोश ग्रंथों की प्रबल भूमिका है। अनुवाद करते समय कमोबेश सभी अनुवादक कोश ग्रंथों की सहायता लेते हैं। आजकल सैकड़ों की संख्या में कोश ग्रंथ विभिन्न भाषाओं में उपलब्ध हैं। अनुवाद प्रक्रिया में आवश्यक प्रमुख शब्दकोश इस प्रकार हैं – स्रोत भाषा कोश, द्विभाषा कोश/त्रि-भाषा कोश, पारिभाषिक कोश, दार्शनिक कोश, आँचलिक शब्दकोश, मुहावरा कोश, लोकोक्ति कोश, पौराणिक कोश/मिथकीय शब्दकोश, वर्तनी शोधक कोश, उच्चारण कोश, विश्व साहित्य कोश, समांतर कोश (Thesaurus), क्रिया कोश, प्रतीक कोश, और विश्वकोश (Encyclopedia) आदि।

साहित्यिक तथा वैज्ञानिक विषयों के अनुवाद में शब्दकोश अत्यंत आवश्यक साधन हैं। कोश ग्रंथों से सिर्फ शब्दों के अर्थ ही नहीं, विभिन्न प्रकार के पर्यायों के साथ स्वनिक लिप्यंकन, शब्दों का उच्चारण, शब्दों की व्युत्पत्ति भी दी जाती है। शब्द की धातु तथा उसके विविध रूपों की जानकारी देने वाले भी कोश ग्रंथ उपलब्ध हैं। अनुवादक को नए-नए शब्दों की भी जानकारी प्राप्त करनी पड़ती है क्योंकि एक जीवंत भाषा में नित्य नए-नए शब्द बनते रहते हैं। कभी शब्दों का अर्थ विस्तार तो कभी अर्थ संकोच भी होता रहता है। जैसे हिंदी के 'पद' शब्द का अंग्रेजी के 'post' पर्याय के रूप में अर्थ विस्तार है तो अर्थ संकोच के रूप में संस्कृत में 'मृग' शब्द का अर्थ 'पशु' है किंतु हिंदी में यह 'हिरन' का पर्याय रह गया है। दरअसल शब्दकोश अनुवाद साधना का अभिन्न अंग है। कुछ प्रमुख कोश ग्रंथों के नाम निम्नलिखित हैं :

1. मानक हिंदी कोश (पाँच खंड) – रामचंद्र वर्मा
2. अंग्रेजी हिंदी शब्दकोश – फा. कामिल बुल्के
3. अंग्रेजी हिंदी शब्दकोश – डॉ. हरदेव बाहरी
4. बृहत् शिक्षार्थी हिंदी-अंग्रेजी शब्दकोश – डॉ. हरदेव बाहरी
5. हिंदी-मलयालम शब्दकोश – अभयदेव
6. नूतन पर्यायवाची एवं विपर्यय कोश (हिंदी-अंग्रेजी) – डॉ. बद्रीनाथ कपूर
7. हिंदी विश्वकोश – नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
8. हिंदी साहित्य कोश (दो भाग) – धीरेंद्र वर्मा
9. आदर्श हिंदी शब्दकोश – आर.सी. पाठक
10. अंग्रेजी-हिंदी प्रशासनिक कोश – कैलाशचंद्र भाटिया
11. अंग्रेजी-हिंदी बृहत् जीवविज्ञान कोश – डॉ. महेश्वर सिंह सूद, डॉ. अरुण कुमार
12. मानक हिंदी मुहावरा कोश – डॉ. शोभाराम शर्मा
13. मानविकी पारिभाषिक कोश – डॉ. नगेंद्र
14. कार्यालय कोश (अंग्रेजी-हिंदी) – गोपीनाथ श्रीवास्तव
15. संस्कृत-अंग्रेजी-हिंदी कोश – आदित्य कुमार मिश्र, मनीष कुमार पाठक

16. अंग्रेजी-संस्कृत-हिंदी कोश – आदित्य कुमार मिश्र, मनीष कुमार पाठक
17. मीनाक्षी अंग्रेजी-हिंदी पर्याय कोश – बद्रीनाथ कपूर
18. हिंदी क्रिया कोश (दो खंड) – हेल्मुन नेस्पिताल
19. प्रामाणिक हिंदी कोश – रामचंद्र वर्मा
20. राजभाषा शब्दकोश (अंग्रेजी-हिंदी) – हरदेव बाहरी
21. हिंदी उच्चारण कोश – भोलानाथ तिवारी
22. हिंदी मुहावरा कोश – भोलानाथ तिवारी
23. हिंदी व्याकरणिक शब्दकोश – डॉ. रामराजपाल द्विवेदी
24. अंग्रेजी-हिंदी अभिव्यक्ति कोश – कैलाशचंद्र भाटिया
25. लोकभारती मुहावरा कोश – बद्रीनाथ कपूर
26. हिंदी पत्रकारिता कोश – प्रतापनारायण टंडन
27. हिंदी शब्दकोश – हरदेव बाहरी
28. सृष्टि हिंदी कोश – डॉ. पूरनचंद टंडन एवं डॉ. हरीश कुमार सेठी
29. हिंदी भाषा एवं साहित्य विश्वकोश (तीन खंड) – गणपति चंद्र गुप्त
20. राजपाल लोकोक्ति कोश – हरिवंश राय शर्मा
31. कहावत कोश – समर सिंह
32. भारतीय साहित्य कोश (तीन खंड) – सुरेश गौतम, वीणा गौतम
33. हिंदी व्युत्पत्ति कोश – बच्चूलाल अवस्थी
34. आधुनिक हिंदी प्रयोग कोश – बद्रीनाथ कपूर
35. हिंदी समाज कोश – ओम प्रकाश कौशिक, वासुदेव शर्मा शास्त्री
36. भारतीय साहित्य कोश – संपादक नगेंद्र
37. Comprehensive English-Hindi Dictionary – डॉ. रघुवीर
38. Websters Third New International Dictionary
39. The Random House Dictionary of the Englhish Language
40. The Oxford Advanced Learners Dictionary
41. मलयालम-मलयालम-हिंदी कोश – एन. कुमार पिल्ला
42. उर्दू-हिंदी शब्दकोश – मुहम्मद मुस्तफा खाँ ‘मद्दाह’
43. सूचना प्रौद्योगिकी शब्द-संग्रह : वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, नई दिल्ली
44. बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह : मानविकी और सामाजिक विज्ञान – वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, नई दिल्ली
45. हिंदी शब्द-सागर – काशी नागरी प्रचारिणी सभा, काशी

46. The New Webster Encyclopeida Dictionary of English Language

(ख) व्याकरण ग्रंथ : अनुवाद प्रक्रिया में स्रोत तथा लक्ष्य भाषाओं पर पर्याप्त अधिकार होना जरूरी है। खासकर दोनों भाषाओं के व्याकरण एवं संरचना की सही जानकारी आवश्यक है। अनूदित पाठ के प्रवाह को बनाए रखने में भी ऐसी जानकारी सहायक होगी। संज्ञा, सर्वनाम, क्रिया, विशेषण, काल, लिंग, वचन, कारक आदि से संबंधित ज्ञान अत्यंत आवश्यक है। उसी तरह अनुवादक को वाक्य की बनावट तथा बुनावट भी जानना अधिक जरूरी होता है। इस कार्य में वह संरचनापरक ग्रंथों की भी सहायता ले सकता है। स्रोत भाषा व्याकरण तथा लक्ष्य भाषा व्याकरण ग्रंथों की मदद कभी-कभार अनुवादक को व्याकरण-ज्ञान के बावजूद भी लेनी पड़ती है।

(ग) संदर्भ ग्रंथ : अनुवाद कार्य में विषय की बहुरूपता होती है। साहित्य, विज्ञान, प्रौद्योगिकी, दर्शन, पत्रकारिता आदि भिन्न-भिन्न विषयों का अनुवाद करना पड़ता है। कभी पौराणिक या मिथकीय प्रसंग आता तो उससे संबंधित संदर्भ ग्रंथ पढ़ना पड़ता है। या फिर यदि कोई प्रतीकात्मक या फैंटेसी-युक्त शैली में रची रचना है तो उस रचना से जुड़े संदर्भ ग्रंथ या समीक्षा ग्रंथ से जानकारी हासिल करना जरूरी हो जाता है। इससे अनुवादक का बोधन का स्तर ऊँचा हो सकता है। तकनीकी या आयुर्विज्ञान से जुड़े विषयों के प्रसंग में भी संदर्भों का आश्रय लेना पड़ता है। कभी पारिभाषिक शब्दकोशों से समान पर्याय मिल सकता है, पर उसके अर्थ तथा भाव की गहराई को समझने के लिए संदर्भ ग्रंथ देखना पड़ता है।

(घ) भाषाविज्ञान ग्रंथ : अनुवाद का भाषाविज्ञान से अटूट संबंध है। अनुवाद स्वयं अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान का अंग माना गया है। अनुवाद कार्य में अक्सर भाषाओं का व्यतिरेकी अध्ययन एवं विश्लेषण आवश्यक हो जाता है। ध्वनि-विज्ञान, रूप-विज्ञान, अर्थ-विज्ञान, वाक्य-विज्ञान आदि भाषाविज्ञान की विभिन्न शाखाओं के साथ अनुवाद का काफी निकट का नाता है। Rama killed a tiger – इस वाक्य को अगर A tiger killed Rama लिखें तो पूरा अर्थ बदल जाता है। अनुवाद में रूपिम को समझना आवश्यक है। साथ ही लिप्यंतरण में प्रत्येक भाषा के स्वनिम को समझना आवश्यक है। ध्वनियों का विभिन्न भाषाओं में जो अंतर कायम है वह अनुवाद तथा लिप्यंतरण में तथा उसके उच्चारण में काफी अड़चनें पैदा करती है। इसलिए अनुवादक की भाषावैज्ञानिक पृष्ठभूमि अनूदित पाठ की सफलता पर असर डालती है।

(3) यांत्रिक उपकरण

विज्ञान और प्रौद्योगिकी के विकास के साथ अनुवाद कार्य में इलैक्ट्रॉनिक साधनों का उपयोग काफी बढ़ गया है। कंप्यूटर तथा अनुवाद के नए-नए सॉफ्टवेयर इस क्षेत्र की महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ हैं। पुराने समय में प्रमुख यंत्र टाइरपराइटर या इलैक्ट्रॉनिक

टाइपराइटर थे। पर आज डी.टी.पी. का जमाना है। पूरा काम कंप्यूटर में ही चलता है। कंप्यूटर आधारित अनुवाद (Computrer-Aided Translation – CAT) आज लोकप्रिय हो रहा है। 'कैट' उपकरणों की दृष्टि से तीन बातें प्रमुख रूप से आती हैं – (क) कंप्यूटर अनुवाद (ख) ऑनलाइन अनुवाद; और (ग) ऑनलाइन शब्दकोश।

(क) **कंप्यूटर अनुवाद :** कंप्यूटर अनुवाद को मशीनी अनुवाद भी कहा जाता है। मशीनी अनुवाद की संकल्पना बहुत अधिक पुरानी नहीं है। इस दृष्टि से कुछ यंत्रों के विकास का प्रयास किया गया। मगर पूर्ण रूप से सफल नहीं रहा। 1933 में पूर्व सोवियत संघ के इंजीनियर सिमनौव-त्रोयान्स्की तथा 1948 में वॉरेन वीवर का प्रयास इस दिशा में महत्वपूर्ण रहा। मशीनी अनुवाद का वास्तविक युग 1954 से माना जाता है। मशीनी अनुवाद का काम व्यवस्थित रूप से सबसे पहले अमेरिका के न्यूयॉर्क राज्य के जार्जटाउन विश्वविद्यालय तथा आई.बी.एम. कंपनी के गणितज्ञों तथा इंजीनियरों द्वारा शुरू किया गया था। उन्होंने IBM-Mark-II अनुवाद प्रणाली विकसित की थी। 1970 के बाद इस दिशा में काफी गंभीर प्रयास होने लगा था।

मशीनी अनुवाद प्रमुख रूप से दो प्रकार से संभव हो पाते हैं – (i) मानव आश्रित मशीनी अनुवाद (Human aided machine translation); और (ii) मशीन-आश्रित मानवीय अनुवाद (Machine-aided human translation)। प्रथम प्रकार में कंप्यूटर महत्वपूर्ण है, जिसके लिए सॉफ्टवेयर विकसित किए गए हैं। मशीनी अनुवाद की प्रक्रिया में प्रमुख रूप से तीन चरण हैं – पूर्व-संपादन, अंतर-संपादन, और पश्च-संपादन। इनमें अंतर-संपादन को छोड़कर बाकी दोनों में मानवीय पक्ष होता है। मशीनी अनुवाद विशेष सॉफ्टवेयर से संभव होता है जिसमें अनुवाद के एल्गोरिथ्म (Algorithm) या गणितीय सूत्र (formulas) दिए होते हैं।

भारत में विशेषकर अंग्रेजी-हिंदी-अंग्रेजी मशीनी अनुवाद की परियोजनाएँ प्रचलित हैं। आई.आई.टी. कानपुर द्वारा विकसित आंग्ल भारती परियोजना में अंग्रेजी से हिंदी तथा अनुभारती में हिंदी से अंग्रेजी अनुवाद की प्रणाली शामिल है। आंग्ल भारती में अन्य भारतीय भाषाएँ भी शामिल की गई हैं। एक अन्य अनुवाद प्रणाली भी विकसित की गई थी, जो 'मंत्रा' (Machine Translation) नाम से जानी जाती है। इसमें अनुवाद की सामग्री समाचारों, वार्षिक रिपोर्टों तथा कुछ तकनीकी वाक्यों तक सीमित है। सी-डैक, पुणे द्वारा विकसित 'मंत्रा' राजभाषा सॉफ्टवेयर (Mantra MachiNe assisted Translation tool) काफी प्रसिद्ध है। इसमें हिंदी से अंग्रेजी और हिंदी से बांग्ला अनुवाद पर भी काम चल रहा है। 'मंत्र राजभाषा' नाम से इस प्रणाली का और भी विस्तार किया गया है। आई.आई.टी. मुंबई द्वारा 'अंग्रेजी-हिंदी-मराठी अनुवाद प्रणाली', सुपर इंफोसॉफ्ट प्राइवेट

लिमिटेड, हैदराबाद द्वारा 'अनुवादक' आई.बी.एम. इंडिया रिसर्च लैब्स द्वार 'अंग्रेजी-हिंदी सांख्यिकीय मशीनी अनुवाद' आदि कई अनुवाद प्रणालियों का विकास चल रहा है। ''कंप्यूटर अनुवाद की अपनी सीमाएँ अवश्य हैं।'' मगर कार्यालयीन तथा सूचनात्मक सामग्री के अनुवाद में ये प्रणालियाँ काफी सहायक हो सकती हैं।

(ख) ऑनलाइन अनुवाद : अनुवाद कार्य में हम सूचना क्रांति का लाभ उठा सकते हैं। इंटरनेट में ऑनलाइन मशीनी अनुवाद संभव है। प्रमुख विदेशी भाषाओं के बीच अनुवाद के लिए मुख्य रूप से http://www.translate.ru, http://babelfish.yahoo.com/; http://www.foreignword.com/ आदि वेबसाइटों पर यह सुविधा उपलब्ध है। हिंदी में खासकर ऑनलाइन अनुवाद की सुविधा गूगल (Google) में उपलब्ध है। मगर मशीनी अनुवाद भी सीमा से परे नहीं है। इस संदर्भ में निम्नलिखित उदाहरण देखिए :

1. **मूल :** There is no well here.
   मशीनी अनुवाद : कोई अच्छी तरह यहाँ नहीं है।
2. **मूल :** These women are going to the well to fetch water.
   मशीनी अनुवाद : इन महिलाओं को अच्छी तरह से पानी लेने के लिए जा रहे हैं।
3. **मूल :** The girl sings well.
   मशीनी अनुवाद : लड़की को अच्छा गाती है।

उपर्युक्त अनुवाद से स्पष्ट है कि अनुवाद की स्तरीयता संकट में है। इस तरह के अनुवाद के बाद गलतियों में काफी अधिक सुधार करना जरूरी हो जाता है। सूचनात्मक पाठ की तुलना में सृजनात्मक पाठ का मशीनी अनुवाद अधिक गलत सिद्ध होता है।

(ग) ऑनलाइन शब्दकोश : सूचना प्रौद्योगिकी ने अनुवाद को ऑनलाइन शब्दकोश जैसा एक नया उपकरण भी दिया है। यह इंटरनेट के जरिए अनुवादक के लिए उपलब्ध शब्दकोश है। स्रोत भाषा कोश या द्वितीय कोश का अनुवादक सहारा ले सकता है। इसके लिए अनुवादक को केवल वेबसाइट में जाना होगा। हिंदी शब्दकोशों के क्षेत्र में अब भी काफी काम चल रहा है। पारिभाषिक शब्दकोश भी ऑनलाइन उपलब्ध हो तो अनुवादक के लिए काफी सहायक होगा। हिंदी में उपलब्ध कुछ ऑनलाइन शब्दकोश इस प्रकार हैं :

1. http://www.shabdakosh.com/
2. http://www.hindkhoj.com/
3. http://www.google.com/translate-dict
4. http://www.cfilt.iiitf.ac.in/

❑

डॉ. दिनेश चमोला 'शैलेश'

लोकोक्तियों और मुहावरों का अनुवाद

लोकोक्ति किसी भी साहित्य अथवा समाज की अत्यंत लोकप्रिय अथवा लोक-प्रचलित विधा है जिसका प्रयोग न केवल विद्वत् समाज द्वारा अपितु ग्रामीण जन-समुदाय द्वारा भी प्रायः किया जाता है। संभवतः इसीलिए इसे लोकोक्ति अर्थात् लोक की उक्ति कहा गया है। साधारण शब्दों में ऐसी उक्ति जिसका प्रयोग जन-समुदाय द्वारा दैनंदिन बोलचाल में किया जाता है या कहें जो जनता जनार्दन की उक्ति है, ही लोकोक्ति है। लोक से लेकर साहित्य एवं विद्वतजनों की अभिव्यक्ति में मुखर होते हैं मुहावरे और लोकोक्तियाँ। पाश्चत्य विद्वान् लॉर्ड रसेल ने लोकोक्ति को परिभाषित करते हुए लिखा है कि "A proverb is the wit of one and wisdom of many."

जन-समुदाय में प्रचलित होने वाली शब्दावली और भाषा का विशेष संदर्भ में परिष्कृत रूप ही अंतराल बाद वहाँ के लोक व्यवहार से लेकर राजकाज तक की भाषा में अपना स्थान बनाने लगता है। मुहावरे और लोकोक्ति भी इसका अपवाद नहीं हैं। मुहावरे और लोकोक्ति साहित्य, समाज एवं जनजीवन की अभिव्यक्तियों को स्वर देने का महत्त्वपूर्ण माध्यम हैं। इनसे जहाँ वाक्य के शृंगार को विस्तार मिलता है, वहीं दूसरी ओर कथ्य की स्पष्टता प्रतीकों एवं भावानुवाद के माध्यम से और स्पष्ट होकर रोचक एवं लोकग्राह्य बनती है। लोकोक्तियाँ सांस्कृतिक पृष्ठभूमि की न केवल परिचायक होती हैं अपितु अपनी युगीन अभिव्यक्तियों का प्रतिबिंब भी होती हैं।

इनकी लोक-ग्राह्यता को देखते हुए संभवतः डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल ने लोकोक्तियों को 'गागर में सागर' भर देने की क्षमता रख देने वाली विधा कहा था।

इनका उपयोग विश्व के संपूर्ण साहित्य से लेकर आंचलिक साहित्यों, यहां तक कि प्रतिष्ठित बोलियों में भी बराबर देखा जाता है। लोकोक्तियों और मुहावरों का अनुवाद

करना जहाँ स्वयं में कठिन और दुरूह कार्य है वहीं अभिव्यक्ति, भावतत्त्व, मूल कथ्य एवं यथार्थता को उसी रूप में प्रस्तुत करने की एक उत्कृष्ट चुनौती भी है। यदि हम किसी लोकोक्ति का शब्दानुवाद कर उसकी अभिव्यक्ति को स्वर देते हैं तो ऐसी अभिव्यक्ति न केवल उसके मूल एवं यथार्थ को समाप्त करती है अपितु अनुवाद जैसी विधा में भी अपवादित होती है।

यद्यपि मुहावरे भी लोकोक्ति की भांति ही लोक की संपत्ति है अर्थात इनका उद्भव भी लोक की कोख से ही हुआ है। फिर भी इनमें वाक्य की खंडता एवं संपूर्णता का बोध अवश्य होता है। मुहावरे एवं लोकाक्तियों के संदर्भ में डॉ. हरदेव बाहरी के ये शब्द अत्यंत समीचीन हैं :

'मुहावरे और लोकोक्ति में यदि कोई साम्य है तो इतना कि दोनों की उत्पत्ति लोक से होती है, दोनों में सामान्य जन के अनुभव संचित रहते हैं, दोनों हमारी लोक संस्कृति के परिचायक हैं, दोनों का प्रयोग भाषा में सजीवता और सरसता लाने के लिए होता है, दोनों में शब्दों का हेर-फेर करने से लोक की प्राण हत्या होती है, दोनों के अर्थ सामान्य से भिन्न और वैचित्र्यपूर्ण होते हैं, दोनों में स्थूल के माध्यम से सूक्ष्म की अभिव्यक्ति होती है, विशेष से सामान्य सत्य का ग्रहण होता है एवं प्रस्तुत से अप्रस्तुत और लाक्षणिक अर्थ की अभिव्यंजना होती है। दोनों का इतिहास बहुत पुराना है।'

हम देखते हैं कि इस प्रकार एक साहित्य और समाज की लोकोक्तियों तथा मुहावरों का अनुवाद दूसरे साहित्य एवं समाज की लोकोक्तियों अर्थात् मुहावरों में यथार्थता अथवा यथार्थ के समीप पहुँच कर अपनी अभिव्यक्ति को पूर्णता प्रदान करती है। कुछ भिन्न-भिन्न भाषाओं में अभिव्यक्त लोकोक्तियों के अनुवादों से यह स्पष्ट परिलक्षित होता है कि अन्यान्य भाषाओं में अनूदित होने पर भी उनका संप्रेषणीय तत्त्व एवं मूलभूत कथ्य समान रूप में बना रहता है। इसके कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं :

1.	अंग्रेजी	Example is better than precept.
	हिंदी	पर उपदेश कुशल बहुतेरे
	गढ़वाली	अफु चलदा रीता, होरु पड़ौंदा गीता
2.	अंग्रेजी	One fish infects the whole water
	हिंदी	एक मछली सारा तालाब गंदा कर देती है।
	गढ़वाली	यौकन ख्वे गौं, सब्बू पड़्यु नौं
3.	अंग्रेजी	A nine day's wonder.
	हिंदी	चार दिन की चांदनी, फिर अंधेरी रात
	गढ़वाली	कभि तैला घाम, कभि शीला घाम
4.	अंग्रेजी	A bad workman quarrels with his tools

	हिंदी	नाच न जाने, आंगन टेढ़ा
	गढ़वाली	खै नि जाणो खसम कांगो, नाच नि जाणो खलो बांगो
5.	अंग्रेजी	As is mother, so is daughter.
	हिंदी	जैसी माँ, वैसी बेटी
	गढ़वाली	जनि मैड़ी, तनि जैड़ी
6.	अंग्रेजी	While in Rome do as Romans do.
	हिंदी	जैसा देश, वैसा भेष
	गढ़वाली	जनु देस, तनु भेस
7.	अंग्रेजी	To attain goal at the cost of death
	हिंदी	मरता क्या न करता
	गढ़वाली	जे कू मरो, वो क्या न करो
8.	अंग्रेजी	A scruplous is always a looser
	हिंदी	जिसने की शरम, उसका फूटा करम
	गढ़वाली	जेक ह्वे शरम, वे का फूट्याँ करम
9.	अंग्रेजी	Regard can not be achieved forcefully
	हिंदी	जान न पहचान, बन गए मेहमान
	गढ़वाली	यार न आवत, पैट्याँ चारि मावत
10.	अंग्रेजी	Neither in trouble nor in happiness.
	हिंदी	न तीन में, न तेरह में
	गढ़वाली	न तीन मां, न त्यौर मां
11.	अंग्रेजी	When the buffaloes fight crops suffer.
	हिंदी	गेहूँ के साथ घुन भी पिस जाए
	गढ़वाली	ग्यूं दगड़ि घूंण बि पिसे जांद
12.	अंग्रेजी	Misfortune never comes alone.
	हिंदी	कंगाली में आटा गीला
	गढ़वाली	निमण्दा नाजा, भला-भला पौणा
13.	अंग्रेजी	Man's worth is known after his death
	हिंदी	बूढ़ों की बात और आँवले का स्वाद बाद में पता चलता है
	गढ़वाली	दांनू कु बोल्यूं, औंळा कु स्वाद
14.	अंग्रेजी	Boiling milk, the blood of youth.
	हिंदी	दूध का उबाल, जवानी का लहू
	गढ़वाली	दूधे उमाळ, ज्वन्नि कु ल्वे
15.	अंग्रेजी	Where there are resources, there are no sources.
	हिंदी	जहाँ नाक नहीं, वहाँ सोना नहीं

गढ़वाली जख नाक तख स्वोनु नी, जख स्वोनु तख नाके नी

16. अंग्रेजी A burnt child dreads the fire.
हिंदी दूध का जला छाछ को भी फूँक-फूँक कर पीता है
गढ़वाली जे कू बाबू रिखन खाए, स्वो काला मुंडखा देखि भि डरद

17. अंग्रेजी wounds may omit but not the words.
हिंदी घाव मिट जाता है, बात रह जाती है
गढ़वाली मर्द मरि जाला, बोल रे जाला

18. अंग्रेजी It takes two to make a quarrel.
हिंदी एक हाथ से ताली नहीं बजती
गढ़वाली यक्खा हाथन रोटि नि बणदि

19. अंग्रेजी A man without ideals.
हिंदी नाक काट के हाथ में रखना
गढ़वाली नाक काटी हाथु माँ धन्न

20. अंग्रेजी A drop in the ocean.
हिंदी ऊँट के मुँह में जीरा
गढ़वाली भैंसा घिचा फ्योंल्यू फूल

21. अंग्रेजी Coming events cast their shadows before.
हिंदी होनहार बिरवान के, होत चीकने पात
गढ़वाली हुणेतेलि डाळि का चलचला पात

22. अंग्रेजी Many a little makes a mickle.
हिंदी बूँद-बूँद करके घड़ा भरता है
गढ़वाली पौळि-पौळि के छांस, मेलि-मेलि के रास

23. अंग्रेजी Might is right.
हिंदी जिसकी लाठी, उसकी भैंस
गढ़वाली जे कू दबदबू, स्वे पदान

24. अंग्रेजी Respect begets respect.
हिंदी अपनी मर्यादा, अपने हाथ
गढ़वाली अपणि इजत, अपणा हाथ

25. अंग्रेजी Something is better than nothing.
हिंदी कुछ नहीं से कुछ भला
गढ़वाली नि मामा से काणु मामा भलू

उपर्युक्त हिंदी और गढ़वाली की कतिपय लोकोक्तियाँ एवं उनके अनुवाद के उपरांत वर्णानुक्रम से कुछ चयनित अंग्रेजी लोकोक्तियों तथा मुहावरों के हिंदी अनुवाद भाषा की भावसाम्यता एवं अनुप्रयोग की दृष्टि से नीचे दिए जा रहे हैं :

अंग्रेजी लोकोक्ति	हिंदी अनुवाद
A	
A confused ruler a chaotic state	अंधेर नगरी चौपट राजा
A helpless man's only support	अंधे की लकड़ी
A cry in wilderness	भैंस के आगे बीन बजाना
A man's worth is known after his death	आदमी की कदर मरे पीछे
A paragon of beauty	कयामत की सुंदरी
A foe in the garb of friend	आस्तीन का सांप
A long way off	काले कोसों दूर
At throw away prices	कौड़ियों के मोल
A Cheating play never thrives	काठ की हांडी एक बार चढ़ती है
A thing of recent past	कल की बात
A good word costs nothing	वचन की दरिद्रता
A nine day's wonder	चार दिन की चाँदनी, फिर अंधेरी रात
As long as there's life, there's hope	जब तक साँस, तब तक आस
A silk patch on rag	सिर पर रेशम की बखिया
A companion in sorrow and joy	दुख-सुख का साथी
A rift appeared between the hearts	दिलों में दरार पड़ गई
A rolling stone gathers no moss	धोबी का कुत्ता न घर का, न घाट का
At death's door	मौत के मुँह में
A bad man is better than a bad name	बद अच्छा, बदनाम बुरा
A robber in the garb of a saint	राम-नाम जपना, पराया माल अपना
Agony both ways	साँप छछूंदर की दशा
As you sow, so shall you reap	जैसी करनी, वैसी भरनी
B	
Bear and for bear is good	सब्र का फल मीठा
Blind imitator	लकीर का फकीर
Between the scylla and charybdis	इधर कुँआ, उधर खाई
Blood is thicker than water	अपना-अपना, पराया-पराया
Biscuit of ground pulse fired in oil	बड़ों की बड़ी बातें
Better be alone than in bad company	बुरी संगत से अकेला भला

Blossoming of the heart bud	दिल की कली खिलना
Beggers and borrowers are not choosers	दान की बछिया के दाँत नहीं गिने जाते
By leaps and bounds	दिन-दूने रात चौगुने
Barking dogs seldom bite	जो गरजते हैं वे बरसते नहीं है
Birds of same feather flock togather	चोर-चोर मौसेरे भाई
Black will take no other hue	काले रंग पर दूसरा रंग नहीं चढ़ता

C

Carrying coal to newcastle	उल्टे बाँस बरेली को
Can you teach old woman to dance	कहीं बूढ़े तोते भी पढ़ते हैं?
Children and fools tell the truth	ओछे के पेट में बात नहीं पचती
Contentment is happiness	संतोषं परम सुखम्
Curst coms have short horns	कुत्ते की दुम, टेड़ी की टेड़ी
Cut your coat according to your cloth	तेते पाँव पसारिए, जेते लांबी सौर
Coming events caste their shadows before	होनहार बिरवान के होत चीकने पात

D

Dew has begun falling	रात भीग गई
Dread and affection never exist together	भय और प्रेम एक जगह नहीं रहते
Discretion between right and wrong	नीर-क्षीर विवेचन
Do not halloo till you are out of wood	जाट मरा तब जानिए, जब तेरहवीं हो जाए
Dry bread at home is better than sweet meat abroad	घर की आधी भली, बाहर सारी नहीं
Diet curses more than doctors	एक परहेज सौ इलाज

E

Every potter praises his pot	अपना पूत सभी को प्यारा
Empty vessels sound much	अध जल गगरी छलकत जाए
Everyone must stand on his own legs	अपना तोसा, अपना भरोसा
Earth enjoys and heaven combines	आम के आम, गुठलियों के दाम
Easier said than done	कहना आसान, करना कठिन
Everyone knows his interest best	सबको अपना मतलब प्यारा

Everything looks yellow to a jaundiced eye	सावन के अंधे को हरा ही हरा दीखता है
Example is better than precept	पर उपदेश कुशल बहुतेरे

F

First deserve than desire	आइने में मुँह देखना
Fickle-minded person	थाली का बैंगन
Falling of heavens	पहाड़ टूट पड़ना
Fetters even of gold are heavy	पैसा गाँठ का, यार साथ का

G

Great cry, little wool	ऊँची दुकान, फीका पकवान
Getting grey without acquiring experience and wisdom	धूप में बाल सफेद होना
Gather thistles and expect pickles	बोया पेड़ बबूल का, आम कहाँ से होए
God's will be done	होय सोय जो राम रचि राखा

H

Hovering around of a crisis	संकट के बादल मंडराना
Honey is not for the ass's mouth	लातों के भूत बातों से नहीं मानते
Here you will not be able to achieve your end	यहाँ तुम्हारी दाल नहीं गलेगी
Henpacked husband	जोरू का गुलाम
Harrassed by time	वक्त का मारा

I

In a state of stupefaction	काटो तो खून नहीं
Irony of fate	किस्मत का फेर
If the sky falls we will catch larks	न नौ मन तेल होगा, न राधा नाचेगी
Ill got, ill spent	चोरी का धन मोरी में
It is better late than never	कभी नहीं से देर भली
It is useless to cry over spilt milk	अब पछताए होत क्या, जब चिड़िया चुग गई खेत
Innocents have nothing to fear	साँच को आँच कहाँ

J

Jack of all trades but master of none	हर फन मौला, हर फन अधूरा

Jovial days	हरे-भरे दिन
Judicious thinking	घिनौनी सोच
Killing two birds with one stone	एक तीर से दो शिकार
Kindness is lost upon an ungrateful man	गए को खिलाया न पाप, न पुण्य
Knowledge is superior to all	विद्या धनं सर्वधनं प्रधानं
Knowledge predominates over mere strength	अक्ल बड़ी या भैंस

L

Lion in peace, deer in war	घर में शेर, बाहर भीगी बिल्ली
Light reflects light	कर भला हो भला
Like master like subjects	जैसा राजा, वैसी प्रजा
Look before you leap	बिना विचारे जो करे, सो पाछे पछताय
Loose character	लंगोट का कच्चा
Let bygones be bygones	बीती सो बीती
Might is right	जिसकी लाठी, उसकी भैंस
Man proposes, God disposes	होय सोय जो राम रचि राखा
Misfortune never come alone	कंगाली में आटा गीला
Misfortune prevails from the very beginning	सिर मुंडाते ही ओले पड़े
Mischievious	शैतान का बच्चा
Many aspirant for one thing	एक अनार सौ बीमार
Many a little makes a mickle	बूंद-बूंद से घड़ा भरता है

N

Nearer the church fartherer from heaven	चिराग तले अंधेरा
Not to budge an inch	टस से मस न होना
Neither fish nor fowl	धोबी का कुत्ता, घर का न घाट का
No-rose without a thorn	जहाँ फूल वहाँ काँटा
No pains, no gains	बिन सेवा मेवा नहीं

O

Out of sight, out of mind	आँख की ओट, पहाड़ की ओट

One better than ever	एक से बढ़कर एक
One fish infects the whole water	एक मछली सारे तालाब को गंदा कर देती है
Out of the frying pan into fire	गए थे नमाज छुड़ाने गले पड़ा रोजा
Old is gold	नया नौ दिन, पुराना सौ दिन
On the verge of starvation	दाने-दाने को मोहताज
One swallow does not make a summer	अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ सकता
Of no consequence	तीन में न तेरह में

P

Prevention is better than cure	इलाज से बचाव अच्छा
Poverty breeds strife	दरिद्रता कलह की जड़
Pennywise, pound foolish	गंवार गन्ना न दे, भेली दे
Pure gold does not fear the flame	साँच को आँच कहाँ
Place acid fruit and salt together	कुत्ते की दुम टेढ़ी की टेढ़ी
Pough protrudes itself in front of the ox	उल्टी गंगा बहाना

Q

Quarter worth very and three quarters to carry	टके की बुढ़िया नौ टके सिर मुंडाई
Question of daily bread	रोटी का सवाल
Quit not certainty for hope	आधी छोड़ सारी को धावे, सारी रहे न आधी पावे

R

Respect begets respect	इज्जत से इज्जत मिलती है
Rome was not built in a day	हथेली पर सरसों जमाना
Resolute in pursuit	धुन का पक्का
Risen from the ranks must turn into crank's	प्यादे से फर्जी भयो, टेड़ो-टेड़ो जात
Riches have wings	लक्ष्मी चंचला होती है
Recovery of honour	खोया सम्मान मिलना

S

Silence is golden	सबसे भली चुप

Slowly and steadily wins the race	सहज पके सो मीठा होय
Struck by misfortune	मुसीबत का मारा
Singing all the days and going to Church on Sundays	नौ सौ चूहे खाए, बिल्ली हज को चली
See which way the wind blows	तेल देखो तेल की धार देखो
Small cost and big show	ऊँची दुकान, फीका पकवान
Strike the iron when it is hot	अपना उल्लू सीधा करना
Something is better than nothing	नहीं से कुछ भला
Self praise is no recommendation	अपने मुँह मियाँ मिठ्ठू बनने से काम नहीं चलता
Steal a goose and give giblets in alms	निहाई की चोरी, और सूई का दान

T

Tit for tat	जैसे का तैसा
To invite trouble	आफत मोल लेना
To be struck by a calamity	आसमान टूट पड़ना
To fall from frying pan into fire	असमान से गिरा, खजूर पर अटका
To Cherish a serpent in ones boosom	आस्तीन का साँप पालना
To exploit more and even more	अंगुली पकड़कर पौंचा पकड़ना
To fight incessantly	ईंट से ईंट बजाना
Two of a trade connot agree	एक म्यान में दो तलवारें नहीं रह सकतीं
To talk of chalk and to hear of cheese	कहें खेत की, सुनें खलियान की
To turn a deaf ear to	कान पर जूं न रेंगना
To speak out bitter truth	खरी-खोटी सुनाना
To be ruefully ashamed	चुल्लू भर पानी में डूब मरना
To torment someone openly	छाती पर मूंग दलना
To add to one's agony	जख्म पर नमक डालना
To make much ado about nothing	राई का पहाड़ बनना
To have all round experience	घाट-घाट का पानी पीना
To leave no stone unturned	जमीन-असमान एक करना
To be between scylla and charybdis	जल में मगर, थल में बाघ

To make an all out efforts	जी-जान से लगाना
To make life miserable	जीना दूभर करना
To live on earth and dream of heaven	झोपड़ी में रहकर महलों के ख्वाब देखना
To be dark days	दिनों का फेर होना
To be very slow in movement	नौ दिन चले अढ़ाई कोस

U

Unshaken trust	अटूट आस्था
Union is strength	एकता में बल
Unity in diversity	अनेकता में एकता

V

Vows made in storm are forgotten in calm	दुःख में सुमिरन सब करें, सुख में करें न कोय
Varying qualities	विशिष्ट गुण

W

Where there is a will, there is a way	जहाँ चाह, वहाँ राह
What is the root of discontent	असंतोष का मूल नहीं
Wits have gone for grazing	अक्ल चरने गई है
Who, the hell is that	किस खेत की मूली हो
What is inscribed can't be omitted	भाग्य लिपि बदले नहीं बदलती
Well begun is half done	पहले मारे तो मीर
Wearies lead no where	परेशानियाँ किसी का हल नहीं
Worthy son of a worthy father	लायक बाप का लायक बेटा
Word is sufficient for a wise	अक्लमंद के लिए इशारा काफी
Who will bell the cat	बिल्ली के गले में घंटी कौन बाँधे

इस प्रकार कहा जा सकता है कि लोकोक्तियों का अनुवाद एक साहित्य से दूसरे साहित्य में अथवा एक भाषा से दूसरी भाषा में करने पर भले ही शब्दों में फेर-बदल हो लेकिन भावाभिव्यक्ति यथावत बनी रहती है। ऐसी ही अभिव्यक्ति लोक-प्रचलित मुहावरों के संदर्भ में भी देखी जाती है।

❑

डॉ. प्रणव शर्मा

विज्ञापन में अनुवाद का महत्व

हिंदी भाषा की प्रयुक्तिपरक विविधता और विलक्षणता का अभिनव आयाम है – विज्ञापन। विज्ञान के संसार में भाषा की क्षमता को उजागर करने में हिंदी ने अपनी शक्ति का परिचय लगातार दिया है। हिंदी भाषा की इस प्रयुक्तिपरक विलक्षणता को विज्ञापनों के संदर्भ में विशेष रूप से देखा जा सकता है। इससे वस्तुतः विज्ञापन की गरिमा और उपादेयता भी रेखांकित हुई है। आधुनिक युग की एक प्रमुख प्रकृति 'विज्ञान और वैज्ञानिकता' की है, तो दूसरी ओर उसकी एक प्रकृति विज्ञापन और वैज्ञानिकता की भी है। विज्ञापन के जिस मायावी संसार का सामना हम कर रहे हैं, उसमें विज्ञापन से बचकर कोई नहीं बच सकता। दर्जनों लांछनों के बावजूद विज्ञापन हमारे दौर की अनिवार्यता है। प्रचार माध्यम कोई भी हो, विज्ञापन के बिना हमारा सारा जीवन-चक्र अधूरा है। विज्ञापन के अंतर्गत वे सारी क्रियाएँ आ जाती हैं, जिसके अनुसार मौखिक अथवा दृश्य-श्रव्य संदेशों के माध्यम से जनता को किसी वस्तु, संस्था, व्यक्ति आदि के बारे में सुनिश्चित एवं प्रभावशाली जानकारी संप्रेषित की जाती है।

विज्ञापन कला, विज्ञान और व्यवसाय का संश्लिष्ट रूप है। इसमें कलात्मकता और तार्किकता के साथ वाणिज्यिक दृष्टि का होना भी परम आवश्यक है। इस प्रकार विज्ञापन औद्योगिक संस्कृति का अभिन्न अंग हो गया है। यह एक वाणिज्यिक विद्या है। विक्रय व्यवस्था में उत्पादन को उपभोक्ता तक पहुँचाने की प्रक्रिया में विज्ञापन, उपयोगी भूमिका निभाता है।

विज्ञापन के माध्यम से वाणिज्य की वृद्धि होती है। इसलिए वाणिज्य और विज्ञापन का अन्योन्याश्रित संबंध है।

किसी वस्तु, व्यक्ति, सेवा अथवा आंदोलन को प्रस्तुत करने वाली सामग्री लिपिबद्ध

शब्द या वाचिक शब्द अथवा उसका चित्रांकन और समग्र संप्रेषण ही विज्ञापन है, जिसे विज्ञापनदाता अपने व्यय से उसकी बिक्री, उनके प्रयोग अथवा उनकी सहमति के लिए प्रकट रूप से जारी करता है। इस दृष्टि से विज्ञापन के चार पक्ष ठहरते हैं – (1) प्रस्तुतकर्ता, (2) लक्ष्य समूह, (3) विज्ञापन के उपकरण; और (4) विज्ञापन का समवेत प्रभाव।

यहाँ यह विचारणीय प्रश्न है कि विज्ञापन की भाषा में अनुवाद की क्या भूमिका है? जगन्नाथ के शब्दों में व्यावसायिक जगत् में अनुवाद की सहायता से भाषा के दो रूप उभरते हैं। एक वह रूप जिसे पत्र-व्यवहार और औपचारिक संदर्भों में प्रयुक्त किया जाता है। दूसरा वह रूप है जिसे विज्ञापन की भाषा प्रयुक्ति में स्थान मिला है जो हिंदी के सामान्य प्रयोक्ता के भाषा व्यवहार से शब्द प्रयोग और भाषिक अभिव्यक्तियों को ग्रहण करने में कोई संकोच नहीं करता।

अंग्रेजी में 'shopping village' जैसे शब्द निर्माण की जो अद्भुत क्षमता है, वह हिंदी में नहीं है। अंग्रेजी में विशेषणमूलक और क्रिया-विशेषणमूलक शब्द सरलता से बन जाते हैं, जैसे energy saving, readymade आदि। परंतु हिंदी में ऐसे शब्दों का अभाव है।

विज्ञापन के अनुवाद में पठनीयता, श्रव्यता, आकर्षण क्षमता, जीवंतता, स्मरणशीलता एवं माधुर्य का होना आवश्यक है। जैसे You can not just beat a bajaj का अनुवाद 'हर दौड़ में बेजोड़ बजाज' ही किया जा सकता है।

अनूदित विज्ञापनों की सफलता का सर्वप्रथम महत्वपूर्ण मानदंड स्रोत (मूल) भाषा के विज्ञापन के मूल संदेश अथवा उसकी भावना को स्वाभाविक एवं रोचकपूर्ण ढंग से लक्ष्य भाषा में संप्रेषित करना है। विज्ञापनों में अनुवाद की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि अनूदित विज्ञापन किस सीमा तक उपभोक्ता के क्रय-व्यवहार को प्रभावित करता है। विज्ञापन की भाषा और उसके अनुवाद की भाषा का सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रयोग उसके लयबद्ध, छंदयुक्त वाक्यों में निहित हुआ करता है। उदाहरण के लिए,

सामान्य

मारूति सर्वोत्तम है – आपके सपनों को जीवन देती है।

प्रस्तावित

मारूति सबसे अच्छी कार – सपने आपके करे साकार!

विज्ञापनों में अनुवाद की भाषा जितनी सहज और स्वाभाविक होगी, अनूदित विज्ञापन उतना ही प्रभावशाली एवं बोधगम्य होगा। वस्तुतः अनुवादक को लक्ष्य भाषा की प्रकृति को ध्यान में रखकर विज्ञापनों का अनुवाद करना चाहिए।

❑

Dr. Sumita P.V.

Post Colonial Translation : A Critical Analysis

Historically if we analyze, the development of colonialism is the mimesis of the industrial revolution. The western colonizer has deliberately tried to pervade their culture in the colonized nation. Colonialism, involves the destruction or the deliberate undervaluing of the people culture, their art, dances, religion, history, geography, education, orature, literature and conscious elevation of the colonizer. The domination of the people language by the language of the colonizing nation was crucial to the domination of the mental universe of the colonized. It is very clear that the colonialism has its own agenda in the enculturisation process. They want to rein the mental world of the colonized. Roxy Haris in his book titled 'Language Ethnicity and Reader' clearly remarked about the conspiracy of the colonizer. In his words – "Colonialism impose its control of the social production of wealth through the military conquest and political dictatorship, but its important area of domination was the mental universe of the colonized; the control through culture how people perceived themselves and the relationship to the world. Economic and political control can never be complete without mental control."[1] The observation clearly predicts the selfish motives of the colonial mentality. This can be seen in the educational policy of the western colonizer too. 'Macaulay declared that we want a class of person Indian in blood and colour but English in taste, in moral and in intellact."[2] He suggested all funds henceforth be employed in imparting the native population a knowledge of English literature and science through English language. In order to fulfill the business motives of the colonizer they decided to translate the specific text into the regional languages of the nation and to establish educational institutions and press. They primarily lay stress on the translation of Bible and dramas of great Shakespear and the poetry of great Milton. The plethora of translation from the western languages completely geared around the cultural halo of western culture.

The post colonial translation has paved way to the unification of oriental and decidental cultural fibers. They assisted a lot in the booming of modern sensibility in Indians. Hans Kohn and his colleagues feel the necessity of this kind of fertilization of the variegated cultures of the world for the purpose of unity of mankind. In his own words "Individual grow and develop spirtually and morally by contact the same holds true of the nation and civilization in the primitive stage people live as strictly separated entities. They jealously guard their own civilization, their original traditions protecting them from the alien influences. But with the progress of the history, barriers give way to growing cross fertilization of civilization, meeting the challenges of other culture, their diversity, their own and liberate it from limiting shackles by assimilating and adapting outside influences often in a complex give and take process. The more open society grows further, it advances towards unity of mankind."[3] The cultural fertilization has created a kind of hegemony of the alien languages over the indigenous vernacular languages of this land. According of the Marxist view if there is a thesis there should be an antithesis. And quite naturally synthesis will occur. The Indian renaissance is the typical example for the rejuvenation of the philosophical grandeur of our land. According to Ayyappa Paniker a very striking feature of the 19th century renaissance in India was the note of nationalism.[4] It pervaded every sphere of activity including the religions. The translation has played a vital role in the resurgence of such noble feelings. The great social reformer of 19th century Raja Ram Mohan Roy hence initially wrote a book titled 'Vedantasaar' and later it translated it into English as 'Abridgement of Vedanta' exhibits the human tendency to take rest in the sanctum of hoary past.

The post colonial translation definitely instilled the new ideals of freedom, equality and fraternity. The English education in India was candidly helpful and that assisted the erudiated class to make acquaintance with the great ideals of French revolution and so on. The Sanskrit translation also assisted the Indians to understand the glory and the depth of the Indian philosophy to a greater extend. The translations of Sanskrit classics like Puranas, Bhagavad Gita, Upanishads and the classical works of Kalidasa created a new awareness and brought enlightenment in the minds of Indians. The arrival of modernism is also the aftermath of the post colonial cultural evolution and translation has played a significant role in molding the human psyche towards this direction and the same is really addresses the basic human worries and hues. The reformers and social readers tried to enter into the world of human. They tried to depict the harsh realities of the society in general. In addition to that the great classics of the western literature had been translated in profuse and they had created noble icons in the Indian minds. It is true that the works of Victor Hugo, Dostoevsky has created in generating a new sensibility among Indians.

The language is generally treated as the medium of communication. The enrichment of the language is purely based on the acceptability of

vocabulary from the different languages. Translation in the post colonial era has directly and indirectly enriched the kernel of the language. It is true that translation brings a new language system in the target language that carries the variegated cultural layers to the target language. The acquaintance with the new science and technology has also enriched the Indian languages to a certain extend. The acceptance of foreign words is not contary to the development of our languages. My opinion is that the adoption of the foreign works should be made strictly by considering the genius and nature of the language. The expressive power of the language is definitely based on the abundance of words, phrases and other ingredients of the language. There are no superior and inferior languages in the world. But the post colonial translation has inserted a kind of slavery mentality in the minds of Indians that the English language is complete in all respect and they feel that the English culture is the high culture. Otto Jesperson has strikingly made remarkable comments on this odd aspects and he said that it is difficult for an English man die without Scandinavian words.

The translation of post colonial period have created awareness among Indians about the various ideological perspectives of the 19^{th} and 20^{th} century. After the Russian revolution, Soviet literature were translated in huge amount and they caused to generate the various concepts of Marxian ideology. The translation from the other languages and other countries is helpful in the comprehension of different life situations of the peoples around the world.

In the neo-liberal scenario the translation has also became a profession and the activity is also established a nexus with the capital flow of the present economic system. We know that neo-liberalism is based on the open market and in other terms it is the culture of the money. The value of the creative literature is also based on the amount of profit that creates in the market based economy. The human sensibility has no remarkable place in the creative process and the neo-libralistic views have lost the human vivacity to a certain extent. The politics and economy of the present translation cannot be neglected in true sense. The online translations and other media translations have its own hidden motives of profit making. It is true that we should defense the anti-human and anti-social elements in the field of literary translation. I want to conclude that the cultural enhancement is naturally possible when it attaches its relationship with the development of human mind.

❑

Reference

1. Roxy Harris, *The Language, Ethnicity and Race Reader, p. 76*
2. K.K. Bhatia, *Modern Indian Education and its Problems, p. 4*
3. Hans Kohn, *Reflections on Modern History, p. 43*
4. Ayyappa Paniker, *Indian Renaissance, p. 34*

अंबरीश त्रिपाठी

अनुवाद की राजनीति और अनुवाद-कर्म

विश्व में विभिन्न भाषाओं में नाना प्रकार के साहित्य का सृजन सदियों से होता रहा है। भिन्न-भिन्न भाषाओं में श्रेष्ठ रचनाएँ लिखी जाती हैं, जो कालांतर में अपने देश या विशिष्ट भाषा-भाषी समुदाय के सीमित दायरे का अतिक्रमण कर विश्व में दूसरे कोनों तक पहुँच जाती हैं। क्या यह विभिन्न विद्वानों द्वारा विश्व की अनेक भाषाओं के सीखने से संभव हुआ है? अगर हम भारत जैसे बहुभाषिक देश की ही बात करें जहाँ संविधान द्वारा मान्यता प्राप्त बाइस प्रधान भाषाएँ हैं। किसी भी व्यक्ति का एक, दो, तीन या कुछेक भाषाएँ जानना स्वाभाविक है परंतु क्या व्यक्ति द्वारा अनेकानेक भाषाओं को सीखकर उनकी रचनाओं को पढ़ पाना संभव होगा? नहीं, इसके लिए हम अनुवाद की सहायता लेते हैं। अनुवाद की विश्वसनीयता और मिथ्यावादिता के आक्षेपों का जवाब यह दिया जा सकता है कि अगर हमें बांग्ला, अंग्रेजी, संस्कृत, चीनी, रूसी तथा कोरियाई आदि भाषाएँ नहीं आतीं तो क्या हमें कालिदास, शेक्सपीयर, लिपो, गोर्की, इब्सन तथा रवींद्रनाथ या फिर प्रेमचंद को पढ़ने या परिचित होने का हक नहीं है। रवींद्रनाथ ठाकुर को 'गीताजंलि' के अनुवाद के आधार पर साहित्य का नोबेल सन् 1913 में दिया गया और गुरुदेव ने स्वयं उसका अनुवाद किया था। मगर फिर भी मूल बांग्ला से वह अनुवाद तो था ही।

विलहेम वॉन हमबोल्ट ने साहित्य के लिए अनुवाद कर्म को अत्यावश्यक माना है। इससे एक देश के निवासी दूसरे देश की कला और मानवता से रू-ब-रू होते हैं तथा कोई एक भाषा-भाषी वर्ग अर्थ और अभिव्यक्ति के नए प्रयोगों से परिचित होकर अपने ज्ञान के क्षितिज का विस्तार कर पाता है। प्रश्न उठता है कि अनुवाद-कर्म क्या है? कैटफर्ड मानते हैं कि 'स्रोत भाषा की पाठ सामग्री को लक्ष्य भाषा की समानांतर पाठ सामग्री से प्रतिस्थापन ही अनुवाद है।' आगे उन्होंने प्रतिस्थापन को स्थानांतरण से

भिन्न बताते हुए कहा कि प्रतिस्थापन का वास्तविक अर्थ है, स्रोत भाषा के व्याकरण और शब्द भंडार का लक्ष्य भाषा के व्याकरण और शब्द भंडार से प्रतिस्थापन तथा इसके परिणामस्वरूप स्रोत भाषा की स्वन प्रक्रिया और ग्राफोलॉजी का लक्ष्य भाषा की स्वन प्रक्रिया और ग्राफोलॉजी से प्रतिस्थापन होता है। यहाँ प्रतिस्थापन का अर्थ शब्द या उसके पर्यायों समतुल्यों के द्वारा प्रतिस्थापन नहीं है।

किसी भी भाषा का व्याकरण, शब्द भंडार, स्वन प्रक्रिया तथा ग्राफोलॉजी आदि सांस्कृतिक पैटर्न के आधार पर विकसित होता है जो जाति, परिवेश तथा समय के द्वारा प्रभावित होता है। किसी भी भाषा में अर्थ मात्र नहीं होते, अपितु सक्रिय अर्थ या हम कह सकते हैं 'evocative meaning' होते हैं। शब्दों के अर्थ से ज्यादा उनके बीच के या उनके आस-पास के अर्थ मायने रखते हैं। उन अर्थ-संदर्भो को पकड़े और उतारे बिना अनुवाद परिपूर्ण एवं प्रभावी नहीं हो सकता। स्रोत भाषा तथा लक्ष्य भाषा के ज्ञान के साथ-साथ विषय की समझ के आधार पर अर्थ को हृदयंगम करके उसे लक्ष्य भाषा में अंतरित करने की जरूरत है। इसके लिए आवश्यक है कि कोशगत संबंधों के अलावा संदर्भगत संबंधों का भी समुचित प्रयोग किया जाए।

वस्तुतः अनुवाद की यह प्रक्रिया जिसमें स्रोत भाषा की पाठ सामग्री का लक्ष्य भाषा की पाठ सामग्री से प्रतिस्थापन सैद्धांतिक रूप से जितना सरल एवं सहज दिखता है व्यावहारिक रूप में यह उतना ही कठिन एवं खतरनाक भी है। आधुनिक युग में सामरिक जरूरतों के कारण अनुवाद कर्म में बहुत तेजी आई। जाने-अनजाने अनुवाद का गलत इस्तेमाल करते हुए विभिन्न देशों ने सामरिक फायदे उठाए। हालाँकि शब्दों की व्याख्याओं का गलत इस्तेमाल हम प्राचीनकाल में ही देख सकते हैं। महाभारत काल में 'नरो वा कुंजारो वा' के प्रयोग, प्रभाव एवं परिणाम से हम भली-भाँति परिचित हैं। बात जब अनुवाद की आती है तो इसके गलत इस्तेमाल की आशंका और बढ़ जाती है। बहुभाषी विश्व में कूटनीति के संचालन में 'राजनीति के अनुवाद' में 'अनुवाद की राजनीति' आम बात है। इसमें किसी देश के प्रमुख के विचारों, कथनों को दूसरी भाषा का मीडिया अपने राष्ट्रहित के अनुसार तोड़-मरोड़ कर प्रस्तुत करता है। हाल ही में अमेरिकी राष्ट्रपति के भाषण का चीनी मीडिया द्वारा चीनी भाषा में गलत अनुवाद कर व्याख्या करने से भारी हंगामा खड़ा हुआ था।

साहित्यिक अनुवाद में भी राजनीति का समावेश होता रहा है। कभी-कभी यह अनुवादकों की अक्षमता या असावधानी के कारण होता है। वैसे, अनुवादकों की सायास संलिप्तता को भी नकारा नहीं जा सकता। इसीलिए अनुवादकों को वंचक या अविश्वसनीय भी कहा गया है। अनुवाद कर्म में अनुवादक अपनी तरफ से कितनी स्वतंत्रता ले सकता

है – यह एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। जहाँ कुछ विद्वान अनुवाद कार्य को नई बोतल में पुरानी शराब मानते हैं अर्थात् मूल से स्वेच्छाचारिता का निषेध करते हैं वहीं विलियम कूपर जैसे विद्वान मूल के प्रति पूर्ण ईमानदारी को एक अभयार्थ स्थिति स्वीकार करते हैं। दरअसल किसी पाठ का अनुवाद करते हुए अर्थ में आंशिक लोप और संयोजन के आधार पर रूपांतरण अनिवार्य है। इसीलिए कभी-कभी अनुवादक का कार्य मूल पाठ की अपेक्षा अच्छा या श्रेष्ठ भी प्रमाणित होता है।

यहाँ अनुवाद कर्म एक सृजनात्मक उपक्रम बन जाता है जिसके द्वारा अनुवादक लेखक की दुनिया को फिर से जीता है। मगर प्रश्न उठता है कि क्या अनुवादक को मूल के प्रति ईमानदार रहने की कोई जरूरत नहीं है।

देखा जाए तो लेखक और अनुवादक में अंतर के दो मुख्य कारण हैं। पहला, अनुवादक की अभिव्यक्ति का ढंग लेखक के ढंग से अलग होता है। उसकी अपनी शैली होती है, जो उसके व्यक्तित्व और युग-बोध पर आधारित होती है। दूसरा, लक्ष्य भाषा के शब्द, पद, अभिव्यक्तियाँ स्रोत भाषा के अनुरूप तो हो सकते हैं, परंतु समान नहीं। चूँकि अनुवाद कर्म का स्वरूप अनुवादक के देश-काल के पाठकों के आधार पर ही निर्धारित होता है इसीलिए अनुवाद करते समय कोशिश यही होनी चाहिए कि लक्ष्य भाषा में मूल का निकटतम अनुवाद एवं आस्वाद बरकरार रखते हुए अनुवाद में सुगमता और पाठकीय आनंद बना रहे। अनुवाद एक परकाया प्रवेश करने जैसा असाध्य कर्म है, जिसमें अनुवादक को खुले दिमाग और पूर्वाग्रह-रहित होकर ही प्रवेश करना चाहिए। किंतु अनुवादक के व्यक्तित्व तथा युग-बोध के कारण उसकी भाषा के प्रयोग में वैचारिक, जातिगत तथा भाषाई शक्तियों का प्रभाव उभर आता है जिसके परिणामस्वरूप एक ही कृति के विभिन्न अनुवादों में हमें विभिन्न आस्वाद प्राप्त होते हैं।

उमर खैयाम की रूबाइयों का अनुवाद करते हुए फिट्जेराल्ड ने खैयाम की आध्यात्मिक तथा दार्शनिक मान्यताओं पर ध्यान ही नहीं दिया। बल्कि उनके द्वारा अनूदित रूबाइयों में फिट्जेराल्ड के संदेहवादी विचार, मृत्यु के बाद जिंदगी के बारे में उनकी धारणा तथा आधुनिक जिंदगी की विषमता को उजागर करने का नजरिया दिखता है जोकि फिट्जेराल्ड की भौतिकतावादी संस्कृति और युग-बोध के अनुकूल था। वहीं दूसरी ओर, जब हरिवंशराय बच्चन ने इनका अनुवाद किया तो पूरी रूबाइयों में रोमांटिक यानी स्वच्छंदतावादी चेतना हावी हो गई। यही नहीं बच्चन की परवर्ती मौलिक रचनाएँ 'मधुकलश' 'मधुज्वाल' और 'मधुशाला' आदि भी उस चेतना से दीप्त रहीं।

इस प्रकार की अनुवादकीय सर्जनात्मक छूटों के अलावा अनुवादक सांस्कृतिक एवं राजनीतिक अभिप्रेरणा के कारण भी मूल पाठ से अलग, काफी विचलन उत्पन्न करते

हैं। इस विचलित अनुवाद से किसी एक लेखक या अवधारणा के प्रति सारा दृष्टिकोण ही परिवर्तित हो जाता है। जैसे मैथिलीशरण गुप्त ने माइकेल मधुसूदन दत्त के बांग्ला काव्य *'मेघनाद वध'* का अनुवाद कर हिंदी जगत् में यह गलत धारणा फैला दी कि मधुसूदन ने राम और लक्ष्मण की तुलना में रावण को कहीं अधिक महान् बताया है।

अनुवाद की राजनीति वहाँ अत्यंत महत्त्वपूर्ण हो जाती है जब किसी वैचारिक साहित्य के अनुवाद में तटस्थता की माँग की जाती है। शीत युद्ध के दौर में पूँजीवादी और समाजवादी, दोनों खेमों ने अपनी वैचारिकता को लेकर कट्टर रूख अपनाया था। साम्यवादी देशों में रहने वाले तथा अपनी व्यवस्था पर चोट करने वाले लेखक पूँजीवादी देशों में खूब प्रसिद्धि पाते थे और उनके अनुवाद रातों-रात सभी पश्चिमी भाषाओं में छपते और बिकते थे जबकि उन्हीं देशों में उनकी रचनाओं पर कलात्मक हीनता का आरोप लगाकर उसकी आलोचना की जाती थी। पश्चिमी सभ्यता के मानकों पर खरा उतरने वाले उपन्यास 'लोलिता' को नोबेल पुरस्कार मिला था। लेकिन क्या यह पुरस्कार राजनीति से प्रेरित नहीं था? आज यह प्रश्न और बड़ा हो गया है कि साहित्य का सर्वश्रेष्ठ पुरस्कार नोबेल क्या निष्पक्ष रूप से साहित्य पर दिया जाता है? अमेरिकी वर्चस्व वाले पश्चिमी देशों के रचनाकारों से मिलकर बनी समिति (जो अंग्रेजी में हुए अनुवादों को आधार बनाकर नोबेल पुरस्कार देती है) से निष्पक्षता की आशा व्यर्थ है। प्रेमचंद, जॉयस, ह्वाइन, टॉलस्टॉय और चेखव जैसे दिग्गजों को यह पुरस्कार न मिलना नोबेल समिति की मानसिकता पर प्रश्नचिह्न लगाता है। स्वयं नोबेल पुरस्कार विजेता माओ जिंग्जियान लेखकीय पराधीनता की बात कहते हैं – "उन दिनों चीन में यदि कोई लेखक बौद्धिक स्वतंत्रता चाहता था तो उसके लिए दो ही रास्ते थे या तो चुप रहे अथवा देश से बाहर भाग जाए।"

इस संदर्भ में अमेरिकी कथाकार हॉवर्ड फास्ट की रचना 'स्पार्टाकस' का उदाहरण अन्यथा न होगा। जब तक फास्ट मार्क्सवादी रहे, उनकी रचनाएँ सोवियत संघ में खूब अनूदित हुईं, पढ़ी और सराही गईं लेकिन जब फास्ट ने कम्युनिस्ट पार्टी छोड़ी तो उनकी किताबें सोवियत संघ में प्रतिबंधित कर दी गईं। उनके रचनाओं की कटु आलोचना की गई। इस प्रकार हम देख सकते हैं कि कैसे कोई देश, संस्था या विचारधारा रचनाओं के अनुवाद पर प्रभाव डालती है।

एक ओर अनुवादक द्वारा अनुवाद के लिए किसी रचना का चुनाव भी उसकी विचारधारा या वैयक्तिक पूर्वाग्रहों से अछूता नहीं रहता। अगर हम स्पैनिश कवि पाब्लो नेरूदा का ही उदाहरण लें तो देखेंगे कि विश्वकवि नेरूदा ने अपनी पचास वर्षो से भी अधिक लंबी काव्य-यात्रा में अपनी ही कविताओं को कई बार बदला। उनकी सामान्य छवि केवल एक प्रतिबद्ध कम्युनिस्ट कवि की है, जबकि उनकी पहली कविता पुस्तक

का शीर्षक है – 'बीस प्रेम कविताएँ और निराशा का एक गीत'। प्रेम कविताओं का यह सिलसिला उनके जीवन-पर्यंत चलता रहा। लेकिन दूसरी भाषा में अनुवादक की एक सीमा होती है जो अपने उद्देश्य के अनुरूप ही कविताओं का चयन करता है। इससे निश्चित रूप से उस भाषा के पाठकों में नेरूदा की वही छवि बनेगी, जैसा अनुवादक चाहता है। यह अघोषित लेकिन गुप्त प्रक्रिया कहानियों, उपन्यासों या निबंधों के चयन में भी हावी रहती है।

पारंपरिक आलोचनात्मक मान्यताओं में किसी एक साहित्यिक पाठ को उसके संदर्भित संबंधों में एक अर्थयुक्त परिपूर्ण पाठ के स्तर में स्वीकृति मिलती रही है। उत्तर-संरचनावदी विद्वान जॉक देरिदा अनुवाद को साहित्य का पदवाच्य स्वीकार करते हुए पाठ की इस पारंपरिक अवधारणा का विरोध करते हैं। उनका मानना है कि हर नए पाठक के लिए कोई भी पाठ अर्थ की अनुपस्थिति का एक नया अवसर होता है। अर्थात् पाठ किसी संदर्भगत अर्थ से बँधा हुआ नहीं होता। हर पाठक के लिए कोई प्रदत्त पाठ 'ब्लूप्रिंट' होता है, जिसका अर्थ पाठक पर निर्भर करता है। एक पाठ के भिन्न-भिन्न अर्थ संभव हैं। अतः प्रत्येक अनुवादक (जोकि लक्ष्य भाषा का पहला पाठक होता है) के सामने पाठ निर्धारण की बहुत बड़ी चुनौती उत्पन्न हो जाती है। देरिदा अनुवाद को सृजनात्मक साहित्य के अनुरूप मानते हैं क्योंकि अनुवादक सृजनात्मक लेखक की तरह अर्थ की एक स्वतंत्र स्थिति को स्वीकारते हुए अर्थ की अर्थवत्ता को प्रमाणित करता है।

इस प्रकार, दोधारी तलवार पर चलने के समान माना जाने वाला अनुवाद कर्म वैचारिक स्तर पर और भी चुनौतीपूर्ण होता जा रहा है। अनुवाद (या पाठ) को तटस्थ, पाठोन्मुख मूल के प्रति ईमानदारी दिखाने की अनुवादकीय जिम्मेदारी निरंतर बढ़ती जा रही है। ❑

संदर्भ

1. पाब्लो नेरूदा – कविता संचयन (अनुवाद : चंद्रबली सिंह), साहित्य अकादेमी, 2004
2. J.C. Catford – *A Linguistic Theory of Translation, London, 1974*
3. Andre Lefevere – *Translation, Rewriting & The Manipulation of Literary Fame,* Routledge, London & New York, 1992
4. Jaques Derrida, (ed). Joseph F. Graham, *Difference & Translation,* Cornell University Press, Ithaca, 1985.

विकास शर्मा

उच्च शिक्षा में हिंदी माध्यम और हिंदी अनुवाद

संसार के सभी विकसित राष्ट्रों में शिक्षा का माध्यम उनकी राष्ट्रभाषाएँ हैं। रूस, जापान, चीन, कोरिया, फ्रांस, जर्मनी आदि सभी देशों ने ज्ञान-विज्ञान और तकनीकी एवं सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में जो उन्नति की है, वह अपनी-अपनी राष्ट्रभाषाओं के माध्यम से की है। 'इंडिया' के लिए यह शर्म की बात है कि बहुभाषी देश होने के बावजूद एक पराई भाषा को ही उच्च शिक्षा का माध्यम के रूप में अपनाकर चलते हुए वास्तव में अपनी सभ्यता और संस्कृति तो खोता ही जा रहा है, साथ ही अपनी देसी भाषाओं में हीन भावना बढ़ा रहा है। भारत वर्षों तक अंग्रेजों का गुलाम रहा। 15 अगस्त, 1947 में 'अंग्रेजी सरकार' से तो मुक्ति पा ली परंतु 'अंग्रेजी' की गुलामी आज भी सह रहा है।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और समाज में रहते हुए वह अपने विचारों का आदान-प्रदान करता है। भाषा ही इस विचार-विनिमय का प्रमुख माध्यम होती है। भाषा का ज्ञान हमें मुख्यतः दो रूपों में होता है। ये हैं — (1) एक विषय के रूप में भाषा; तथा (2) ज्ञान-विज्ञान के विभिन्न विषयों की माध्यम भाषा के रूप में भाषा। शिक्षा के क्षेत्र में विषय और माध्यम दोनों महत्वपूर्ण होते हैं। हम जो विषय पढ़ते हैं और जिस भाषा के माध्यम से पढ़ते हैं वे दोनों ही मिलकर हमारे ज्ञान को बढ़ाते हैं और हमारे व्यक्तित्व के विकास में मददगार साबित होते हैं। हम भूगोल, गणित, राजनीति विज्ञान, रसायन विज्ञान, भौतिकी, जीव-विज्ञान, इतिहास जैसे ज्ञान के विविध विषयों को किसी न किसी भाषा के माध्यम से ही पढ़ते हैं। इन विषयों को जिस भाषा के माध्यम से पढ़ाया जाएगा उससे हमारे अंदर उस भाषा की सभ्यता और संस्कृति के संस्कार भी पैदा होंगे। भाषा कोई निरपेक्ष वस्तु नहीं है, वह सापेक्ष संबंध रखती है। भाषा, समाज-सभ्यता और संस्कृति की वाहक होती है।

14 सितंबर, 1949 को हिंदी को भारतीय संविधान के अनुच्छेद 343(क) के अंतर्गत संघ की राजभाषा बनाया गया। परंतु हिंदी का यह दुर्भाग्य रहा कि अंग्रेजी भाषा (जो हिंदी की सह-राजभाषा बनाई गई थी) सरकार की प्रमुख भाषा बनी हुई है और हिंदी सरकारी कार्यालयों में अनुवाद की भाषा बनकर रह गई। आजादी के 65 वर्षों के बाद भी संसद की प्रमुख भाषा अंग्रेजी बनी हुई है। हमारे देश में नेता हो या अभिनेता खाते हिंदी की हैं और गाते अंग्रेजी की हैं। नेता चुनाव में जनता के पास जाते हैं तो हिंदी बोलते हैं और संसद में बहस अंग्रेजी में करते हैं। अभिनेता बॉलीवुड की हिंदी फिल्मों में काम करके पैसा और नाम कमाते हैं परंतु मीडिया में इंटरव्यू अंग्रेजी में देते हुए अपनी शान समझते हैं।

भारत में 'लॉर्ड मैकाले' के प्रयासों से सन् 1835 में अंग्रेजी को औपचारिक रूप से ज्ञान-विज्ञान की भाषा के रूप में मान्यता मिली और अंग्रेजों के अथक प्रयासों के बावजूद वर्ष 1947 तक भारत में लगभग 1 प्रतिशत लोग ही अंग्रेजी भाषा को जानने और समझने वाले थे। परंतु आजादी के बाद इसके प्रचार-प्रसार में आशातीत प्रगति हुई और इन 65 वर्षों में यह प्रतिशत बढ़कर लगभग 10-11 हो गया है। हमारे देश में उच्च शिक्षा देने वाले ज्यादातर विश्वविद्यालयों में ज्ञान-विज्ञान, इतिहास, विधि-न्याय, कंप्यूटर, शिक्षा, चिकित्सा, अभियांत्रिकी आदि की शिक्षा अंग्रेजी में ही दी जाती है। माता-पिता बच्चे को अंग्रेजी बोलते देखकर खुशी से फूले नहीं समाते। भारतीय लोग अंग्रेजी में बोलना अपना स्टैंडर्ड समझते हैं। आज 'अंग्रेजी स्पीकिंग कोर्स' संस्थान बड़े-बड़े शहरों में कुकुरमुत्ते की तरह फैलते जा रहे हैं। गौर करें तो हम पाएँगे कि अंग्रेजी बोलने वालों की संख्या में बढ़ोत्तरी हो रही है परंतु उसके साथ-साथ हमारे विद्यार्थियों की मौलिक चिंतन की शक्ति भी कम होती जा रही है।

शिक्षा के माध्यम रूप में हिंदी की स्थिति हिंदी भाषी राज्यों में विद्यालयी स्तर पर तो संतोषजनक है परंतु विश्वविद्यालयी स्तर पर आज भी दयनीय है। वैसे उत्तर प्रदेश, बिहार, राजस्थान, हरियाणा, मध्य प्रदेश और दिल्ली में उच्च स्तर पर भी शिक्षा के माध्यम रूप में हिंदी की स्थिति प्रशंसनीय है।

अंग्रेजी माध्यम से शिक्षा देने के कारण भारत एक नकलची और पिछलग्गू राष्ट्र बना हुआ है। आज भी भारत मानसिक गुलामी से ग्रस्त है। कहा जाता है कि चीन में भी अंग्रेजी शिक्षा का प्रसार हो रहा है। यह सही है। परंतु ध्यान देने योग्य बात यह है कि अंग्रेजी वहाँ एक विषय के रूप में अपनाई गई है, न कि भाषा के माध्यम रूप में। वहाँ आज भी उच्च शिक्षा का माध्यम 'चीनी' भाषा है। चीन में सारा कार्यालयी, वाणिज्यिक, वैज्ञानिक काम चीनी भाषा में ही किया जाता है। वहाँ के विद्यार्थी विदेशों

— चाहे वह अमेरिका हो या इंग्लैंड — में जाकर उच्च शिक्षा प्राप्त करते हैं किंतु वापस आकर अपने देश में सारा काम चीनी भाषा में ही करते हैं। वहाँ विदेशी कंपनियों को भी चीनी भाषा में ही कार्य करना पड़ता है।

भारत को भी चीन से शिक्षा लेनी चाहिए। हमें भारत में भी अंग्रेजी भाषा का विरोध नहीं करना चाहिए क्योंकि भाषा ज्ञान से ही तो नई-नई चीजों का पता चलता है, उस भाषा के साहित्य को पढ़कर हम उस देश की सभ्यता और संस्कृति के श्रेष्ठ गुणों से परिचित होते हैं परंतु शिक्षा का माध्यम विदेशी भाषा न होकर अपनी राष्ट्रभाषा ही होनी चाहिए। व्यक्ति अपनी भाषा में ही अपने उद्‌गारों को सही और सशक्त रूप से व्यक्त कर सकता है। विदेशी भाषाओं को तो वह सप्रयास रहकर सीखता है जबकि अपनी भाषा को अनायास ही सीखता है और उसमें सिद्धहस्त भी होता है और मौलिक चिंतन-मनन करता है।

उच्च स्तर पर हिंदी को माध्यम भाषा बनाने की बात आती है तो अंग्रेजी के पक्षधर दलीलें देने लगते हैं कि हिंदी में पुस्तकों की कमी है, वैज्ञानिक और तकनीकी विषयों में पढ़ाने वाले प्राध्यापकों की कमी है, कंप्यूटर और इंटरनेट में भी अंग्रेजी भाषा का वर्चस्व है, भूमंडलीकरण के युग में विदेशों में रोजगार के अवसर अंग्रेजी में ही अधिक दिखते हैं आदि-आदि। देखने-सुनने में ये बातें ठीक लगती हैं परंतु पूरी तरह से सही नहीं। भारत में हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने और उच्च शिक्षा के माध्यम रूप में स्थापित करने के सभी साधन और अवसर उपलब्ध हैं। सिर्फ कमी है तो हमारी नीयत में। सरकार की भाषा नियोजन के मामले में मंशा ठीक नहीं दिखती है।

भारत सरकार ने हिंदी को बढ़ावा देने के लिए पाठ्य-पुस्तकों के निर्माण और शिक्षण सामग्री उपलब्ध करवाने के लिए 27 अप्रैल, 1960 के राष्ट्रपति के आदेश के अनुसार 1961 में 'वैज्ञानिक तथा तकनीक शब्दावली आयोग' की स्थापना की। आयोग ने अब तक लगभग 8 लाख हिंदी शब्द तैयार किए हैं। हिंदी में विभिन्न विषयों की पाठ्य-पुस्तकें तैयार की हैं और विभिन्न पारिभाषिक कोश तैयार किए जा चुके हैं। शब्दावली आयोग ने कृषि, आयुर्वेद, सूचना-प्रौद्योगिकी और अभियांत्रिकी की अनेक पुस्तकें हिंदी में तैयार की हैं। भारतीय प्रौद्यागिकी संस्थान, नई दिल्ली, मुंबई और कानपुर की हिंदी पत्रिकाओं में वैज्ञानिक विषयों पर शोधपरक सामग्री पर्याप्त मात्रा में छप रही है और अब तो इन विषयों में पी-एच.डी. के शोध-प्रबंध भी हिंदी माध्यम से पूरे हो रहे हैं। हिंदी माध्यम से कंप्यूटर में भी आए दिन नए प्रयोग हो रहे हैं और विदेशियों ने माना है कि हिंदी की देवनागरी लिपि कंप्यूटर के लहजे से सबसे अधिक वैज्ञानिक और सुगम लिपि है।

यूरोपीय विद्वानों ने हिंदी को महान भाषा माना है। जॉन गिलक्राइस्ट हिंदी वर्णमाला

को सर्वाधिक पूर्ण वर्णमाला मानते हैं। ग्रियर्सन के अनुसार हिंदी ही भारत में राष्ट्रभाषा का स्थान ले सकती है। फॉदर कामिल बुल्के के अनुसार – ‘‘विश्व में कोई भी भाषा ऐसी नहीं है, जो सरलता से अभिव्यक्ति की क्षमता में हिंदी की बराबरी कर सके। इसकी लिखाई और उच्चारण में आश्चर्यजनक अनुरूपता है। इसलिए इसका लिखना और पढ़ना सबसे आसान है।’’ भारत में भी स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान हमारे महान नेताओं ने संपर्क साधने के लिए और राष्ट्रीय जागरण के लिए हिंदी को ही चुना और अहिंदी भाषी होने पर भी हिंदी को ही राष्ट्रभाषा बनाने की पैरवी की। इन नेताओं में महात्मा गांधी, रवींद्रनाथ टैगोर, सुभाषचंद्र बोस, महर्षि अरविंद इत्यादि प्रमुख थे।

अंग्रेजी के पक्षधरों का यह मानना है कि उच्च शिक्षा में विज्ञान से संबंधित विषयों को अपनी देसी भाषाओं में पढ़ाना बहुत दुष्कर कार्य है। परंतु वे शायद भूल रहे हैं कि एक समय तक्षशिला, नालंदा और विक्रमशीला विश्वविद्यालयों में पूरे विश्व के ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा के इच्छुक विद्यार्थी यहाँ शिक्षा ग्रहण करना अपना सौभाग्य समझते थे। उस समय संस्कृत हमारी उच्च शिक्षा का माध्यम थी और इसी में आर्यभट्ट ने खगोलशास्त्र, चरक ने आयुर्विज्ञान, चाणक्य ने अर्थशास्त्र, लीलावती ने गणितशास्त्र और वात्स्यायन ने कामसूत्र की अद्‌भुत रचनाएँ कीं।

उच्च शिक्षा के माध्यम रूप में हिंदी भाषा को अनुवाद से काफी बल मिलता है। अनुवाद के माध्यम से हिंदी का प्रचार-प्रसार हो रहा है। भारतीय भाषाओं में बांग्ला, गुजराती, मराठी, तमिल, तेलुगु, मलयालम आदि की रचनाएँ हिंदी भाषा में सर्वाधिक अनूदित हुई हैं और हो रही हैं। इसका प्रमुख कारण हिंदी पाठकों की संख्या का अधिक होना है। अनुवाद की बदौलत ही रवींद्रनाथ टैगोर, शतरचंद्र चैटर्जी और महाश्वेता देवी अखिल भारत में प्रसिद्धि पा सके।

हिंदी में अनेक भाषाओं के कोश तैयार हो चुके हैं। विज्ञान और तकनीकी विषयों से संबंधित पुस्तकों की संख्या में वृद्धि हो रही है। संसार की श्रेष्ठ भाषाओं के उच्च स्तर के साहित्य का हिंदी भाषा में अनुवाद काफी मात्रा में हुआ है और इन प्रयासों को आगे बढ़ाते रहना होगा। भारत में हिंदी माध्यम में अनुवाद कराने वाली संस्थाओं में साहित्य अकादमी, नेशनल बुक ट्रस्ट, भारतीय ज्ञानपीठ संस्थान, विभिन्न राज्यों की ग्रंथ अकादमियाँ, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय और कई निजी संस्थान अपना भरपूर योगदान दे रहे हैं। भारत सरकार ने 5 मार्च, 1971 को केंद्रीय अनुवाद ब्यूरो की स्थापना की जो सरकारी कार्यालयों, प्रतिष्ठानों, कंपनियों और राष्ट्रीयकृत बैंकों की असांविधिक सामग्री का भी अनुवाद करता है। भारत सरकार को इस दिशा में अनुवाद कार्य करने वाली संस्थाओं और व्यक्तियों को प्रोत्साहन राशि के रूप में समय-समय पर पुरस्कार देने और

उन पुस्तकों के प्रचार-प्रसार की उचित व्यवस्था करनी चाहिए।

भारत में हिंदी अनुवाद के माध्यम से उच्च शिक्षा की पुस्तकों के अभाव को दूर किया जा सकता है परंतु इसमें ध्यान रखना होगा कि अनुवाद सही और उच्च स्तर का हो। अनुवाद करते समय हमें ध्यान रखना होगा कि भाषा की शुद्धता और पवित्रता के अनावश्यक चक्कर में पड़कर हम दुरूह और अटपटे शब्दों को न अपना लें। ऐसा हास्यास्पद ही लगेगा। बहुत अधिक तकनीकी शब्दों को तो हमें वैसे का वैसा ही अपना लेना चाहिए बशर्ते देवनागरी लिपि में उसे लिप्यंतरण कर लिया जाए। 'कंप्यूटर' और 'मोबाइल' के अनुवाद शब्द क्रमशः 'संगणक' और 'चलभाष यंत्र' भी दुरूह और अटपटे लगते हैं। 'प्लेटो' को अगर हिंदी में 'अफलातून' लिखेंगे तो अनेक लोगों की समझ में नहीं आएगा। सरकारी हिंदी के कुछ उदाहरण देखिए –

(1) एक राज्य में 'Public works Department' के लिए 'सार्वजनिक निर्माण विभाग' शब्द है तो दूसरे राज्य में 'लोक निर्माण विभाग'।

(2) अंग्रेजी 'Grievance' शब्द के लिए राजस्थान में 'शिकायत', उत्तर प्रदेश में 'कष्ट', बिहार में 'व्यथा' और मध्य प्रदेश में 'दुःख' जैसे शब्द का प्रयोग करके अनुवाद करना हास्यास्पद लगता है।

वास्तविकता यह है कि स्टेशन, रेलवे, प्लेटफार्म, स्कूल, कॉलेज, टिकट, सिनेमा, पुलिस, टेलीफोन, मोबाइल, कंप्यूटर, वीडियो कैसेट आदि अंग्रेजी के सैकड़ों शब्द आज हिंदी भाषा का ही अंग बन चुके हैं और इन्हें इन्हीं रूपों में स्वीकार कर लेना चाहिए। जो संस्थाएँ अनुवाद कार्यों में संलग्न हैं, उन्हें यह भी ध्यान रखना होगा कि अनुवाद कार्य सही लोगों के हाथ में दिया जाए। अनुवादक विषय का ज्ञाता होने के साथ-साथ हिंदी भाषा का भी पर्याप्त ज्ञान रखता हो अन्यथा अर्थ का अनर्थ हो जाएगा।

हिंदी को उच्च शिक्षा की माध्यम भाषा तभी बनाया जा सकता है जब उसे रोजगार के साथ सीधे जोड़ा जाए। हिंदी जिस दिन संपूर्ण भारत की राजभाषा और राष्ट्रभाषा के रूप में गर्व के साथ सभी राज्यों में अपना ली जाएगी उस दिन भारत में 'हिंदी' शिक्षा का माध्यम अपने आप हो जाएगी!

❑

डॉ. रणजीत साहा

गीतांजलि अनुवाद : ठाकुर बनाम टैगोर

हम में से अनेक लोगों के लिए यह हैरानी-भरी सूचना होगी कि सुप्रसिद्ध हिंदी कथाकार गोपाल राम गहमरी ने रवींद्रनाथ की नृत्यनाटिका *'चित्रांगदा'* (प्रकाशन वर्ष 1892 ई.) का अनुवाद 1895 ई. में ही किया था। इससे उन्नीसवीं सदी के अंत तक युवा कवि रवींद्रनाथ के बढ़ते प्रभाव का पता चल जाता है। हिंदी में कवि रवींद्रनाथ की स्वीकार्यता 'सरस्वती' पत्रिका द्वारा वर्ष 1901 ई. से लेकर उनके जीवन-पर्यंत बनी रही। छिटपुट अनूदित एवं प्रकाशित होने वाली रचनाओं के बाद वर्ष 1913 ई. में *गीतांजलि* को नोबेल पुरस्कार मिलने के साथ ही, न केवल हिंदी एवं भारतीय भाषाओं में बल्कि अंग्रेजी, फ्रांसीसी, रूसी, चीनी, जापानी, कोरियाई आदि विश्व की सभी प्रमुख भाषाओं में *गीतांजलि* तथा कवि की अन्यान्य कृतियों के अनुवाद बहुत तेजी से होने लगे। इनमें से अधिकांश अनुवाद जहाँ 'स्वांतः सुखाय' थे, वहाँ विश्व-कवि के रूप में उपलब्ध प्रथम एशियाई और भारतीय के रचना सान्निध्य से प्राप्त प्रसन्नता का आग्रह भी कम नहीं था। वर्ष 1910 में रवींद्रनाथ ठाकुर प्रणीत बांग्ला कृति *गीतांजलि* और इन्हीं के द्वारा अंग्रेजी में अनूदित *गीतांजलि* वर्ष 1913 में नोबेल पुरस्कार से सम्मानित रचना है। विश्व की लगभग सभी समादृत भाषाओं में इसके एकाधिक अनुवाद हो चुके हैं। कहना न होगा, भारतीय भाषाओं में भी, न केवल समर्थ एवं समर्पित अनुवादकों द्वारा बल्कि प्रतिष्ठित रचनाकारों द्वारा भी *गीतांजलि* के अनुवाद, भाषांतर एवं भाष्य तैयार किए गए हैं।

काव्य विधा के संबंध में, अनुवादक को मूल के भाव, भाषा, शैली और प्रभाव को लक्ष्य भाषा में अंतरित या संप्रेषित करने में सफलता तभी मिल सकती है जब उसकी भाषा-क्षमता को उसकी रचना-मनीषा का साथ मिले। *गीतांजलि* के मामले में मूल गानों के पद-विन्यास, उसमें निहित लय, कवि का मर्म एवं अनुरोध एक-दूसरे

में इस तरह रचे-बसे हैं कि किसी एक कारक से अनुवादक का ध्यान हटता है तो दूसरा या तीसरा कारक भी अपना संतुलन या प्रभाव खो बैठता है। ऐसे में किसी भी अनुवादक की योग्यता प्रश्नांकित हो जाती है।

प्रसिद्ध अनुवादविद् यूजीन ए. नाइडा द्वारा अनुवाद के पाँच प्रमुख चरणों के निकष पर *गीतांजलि* के गानों की पहचान की जा सकती है। मूलनिष्ठता, पठनीयता, बोधगम्यता, संप्रेषणीयता और प्रयोजनसिद्धि के आधार पर *गीतांजलि* के हिंदी अनुवादों और स्वयं रवींद्रनाथ द्वारा इसके अंग्रेजी गद्यानुवाद के बारे में विद्वानों और शोधार्थियों ने चर्चा की है। अनुवाद को 'अनुसृजन' का पद देकर रवींद्रनाथ ने अनुवादकों को 'सर्जक' की श्रेणी में बैठाने का सम्मान तो प्रदान किया ही, साथ ही, एक सर्जक के नाते मूल पाठ के प्रति निष्ठावान रहते हुए, थोड़ी-बहुत स्वतंत्रता देने और लेने की वकालत भी की है। *वन हंड्रेड पोएम्स ऑव कबीर* (1914 ई.) का अनुवाद करते हुए उन्होंने इस मामले में पर्याप्त छूट ली है।

रवींद्रनाथ की रचनाओं के मर्मज्ञ समालोचक शिशिर कुमार घोष ने रवींद्रनाथ की *गीतांजलि* के कुछेक गानों का संश्लिष्ट विश्लेषण करते हुए बताया है कि "इसकी गंगा-जमुनी धारा में कई लहरें हैं। मध्ययुगीन कवियों की परंपरा की सामाजिक और धार्मिक आलोचना का स्वर भी इसमें है। धर्म समाज से विस्मरण नहीं कर देता, बल्कि व्यक्ति में ख़ास तरह का सात्विक आक्रोश भर देता है।"[1]

रवींद्रनाथ ठाकुर द्वारा बांग्ला में लिखित कुल 157 गानों का संकलन *गीतांजलि* का प्रकाशन सितंबर 1910 (1317 बंगाब्द) में, इंडियन पब्लिकेशन हाउस, कोलकाता द्वारा किया गया था। एक बात और है कि इसमें कवि रवींद्रनाथ रचित कुछ पूर्ववर्ती काव्य संकलन के गान भी शामिल किए गए। उन संकलनों में — *'नैवेद्य'* से 15, *'खेया'* से 11, *'शिशु'* से 3 और *'चैताली'*, *'कल्पना'* और *'स्मरण'* से एक-एक गीत लिए गए थे। गीतांजलि का पूर्णांग संस्करण (जिसमें कुल 157 गान या गीत संग्रहीत थे) के 'विज्ञापन' (प्राक्कथन) में रवींद्रनाथ ठाकुर ने दो पंक्तियों में जो कहा है, वह यहाँ उद्धृत है :

> "इस ग्रंथ में संकलित आरंभिक कुछेक गीत (गान) दो-एक अन्य कृतियों में प्रकाशित हो चुके हैं। लेकिन थोड़े समय के अंतराल के बाद जो गान रचित हुए, उनमें परस्पर भाव-ऐक्य को ध्यान में रखकर, उन सबको इस पुस्तक में एक साथ प्रकाशित किया जा रहा है।"

गीतांजलि के 53 गीतों का अंग्रेजी गद्यानुवाद बाद में नवंबर, 1912 में इंडियन सोसाइटी आव लंदन द्वारा *सांग आफरिंग्स* शीर्षक से किया गया था। इसमें वे अन्य

पचास गान (यानी कुल 103) रवींद्रनाथ के अन्यान्य संकलनों से चुनकर भी सम्मिलित किए गए थे, जो कमोबेश गीतांजलि के गानों के भाव-बोध के समकक्ष थे।

इसलिए, यहाँ यह ध्यान में रखना चाहिए कि रवींद्रनाथ ठाकुर को जब 13 नवंबर 1913 को नोबेल पुरस्कार देने की घोषणा की गई तो यह मूल बांग्ला *गीतांजलि* के गानों के संकलन पर नहीं था बल्कि उन चयनित गानों के आधार पर संकलित गान संग्रह पर था, जिनका गद्य में अनुवाद स्वयं कवि ने किया था।

गीतांजलि को नोबेल पुरस्कार मिलने के बाद, उसकी अभूतपूर्व चर्चा और सफलता से प्रेरित होकर हिंदी सहित इसके भारतीय एवं विदेशी भाषाओं में अनेक अनुवाद और भाषांतर किए गए। इनसे अधिकांश पाठकों को अपनी-अपनी भाषा यहाँ तक कि बोलियों में भी अनूदित *गीतांजलि* के भाव बोध और अनुरोध को समझने में सहायता मिली। लेकिन उन सुधी और जिज्ञासु पाठकों की प्यास नहीं बुझी जो कवि के मानस और गीतों की अंतर्वस्तु में सीधे प्रवेश पाना चाहते थे और जो थोड़ा-बहुत अभ्यास और प्रयास कर मूल *गीतांजलि* के मर्म एवं संदेश तक पहुँच सकते थे। ऐसे ही विशिष्ट पाठकों की इच्छा को ध्यान में रखकर विश्वभारती ग्रंथालय ने वर्ष 1957 में *गीतांजलि* का नागरी लिप्यंतरण प्रकाशित किया। इसकी भूमिका डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी ने अंग्रेजी में लिखी थी। चूँकि इसमें किसी लिप्यंतरकार या सहयोगी का उल्लेख नहीं है, इसलिए स्पष्ट है कि यह कार्य उन्होंने ही किया होगा।

डॉ. चटर्जी ने संक्षेप में नागरी लिप्यंतरण की उपयोगिता के साथ इसकी व्यावहारिक कठिनाइयों और सीमाओं की ओर भी ध्यान दिलाया था क्योंकि बांग्ला भाषा के उच्चारण और लेखन वैशिष्ट्य को यथावत् लिप्यंतरित करना संभव नहीं है। उदाहरण के लिए, 'य' और 'ज' तथा 'व' और 'ब' ध्वनि का पार्थक्य, 'व' और 'ओय' ध्वनिविकार – यथा, 'हावा' का उच्चारित रूप – और लिखित रूप 'हाओया' (हिंदी 'हवा') में अनुरूप तालमेल मिलाना संभव नहीं हो पाता। इसी तरह बांग्ला में 'श', 'ष' और 'स' – इन तीनों ध्वनियों का लिखित रूप तो प्राप्त एवं प्रचलित है लेकिन इन तीनों के लिए उच्चरित ध्वनि केवल 'श' ही है। स्वर और व्यंजन ध्वनियों का ओकारांत उच्चारण बांग्ला भाषा की निजी विशिष्टता है। यथा, अमर का उच्चारण 'ओमोर' होगा। लेकिन शब्द में अंतिम अकारांत वर्ण का उच्चारण यथावत् (उदाहरण के लिए 'मतामत' का बांग्ला में उच्चारण 'मोतामोत' का अंतिम 'त') हिंदी की तरह अकारांत ही रहेगा यानि वह 'मोतामोतो' नहीं होगा। बांग्ला उच्चारण के एकाध अन्य वैशिष्ट्य का हवाला देकर यह प्रकरण समाप्त करना उचित होगा कि बांग्ला में 'क्ष' का उच्चारण 'क्ख' और 'ज्ञ' तथा 'द्य' का उच्चारण क्रमशः 'ग्ग' तथा 'द्द' की तरह होता है।

कालांतर में, भी थोड़े-बहुत संशोधन और पाठांतर सहित *गीतांजलि* के अन्य कई संकलनों में देवनागरी पाठ को सम्मिलित किया जाता रहा है। इसका मुख्य उद्देश्य यही रहा कि वे पाठक जो बांग्ला भाषा की थोड़ी-बहुत समझ रखते हैं, वे इसके गीतों की गेयात्मकता के साथ मूल का यथासंभव आस्वाद एवं आनंद उठा सकें। साथ ही, अपनी समझ और तैयारी के अनुरूप इनका अर्थ और आशय ग्रहण कर सकें।

'गीतांजलि' के अनुवाद में, विशेषकर हिंदी भाषा के अनुवादक जिस समस्या से सबसे अधिक रू-ब-रू हुए हैं, वह है – इसके गानों की गेयता की रक्षा कैसे की जाए? बांग्ला भाषा में 'रक्षा', 'भिक्षा', 'प्रतीक्षा', 'परीक्षा' को क्रमशः 'रक्खा', 'भिक्खा', 'प्रतीक्खा' और 'परीक्खा' उच्चारित किया जाता है। श, ष, स को 'श' की तरह उच्चारित किया जाता है। यानी 'देश' और 'निश्शेष' और 'दास' की अन्त्य ध्वनि 'श' की तरह ही उच्चारित होगी।

'सांत्वना', 'यंत्रणा', 'संध्या', 'हृदय', 'प्रार्थना', 'क्षण', 'असह्य', स्वप्न जैसे तत्सम शब्द *गीतांजलि* में बहुधा प्रयुक्त हुए हैं और उनकी मुद्रित एवं मानक वर्तनी भी यही है। लेकिन इनके उच्चारित रूप, विशेषकर गेय रूप को, हिंदी अनुवाद में और समरूप मात्रा में अंतरित कर पाना कष्टकर चुनौती है। इसलिए जिन अनुवादकों ने छंद के आग्रह को हिंदी अनुवाद में बनाए रखा है, वे सफल हुए हैं। यहाँ यह कहने में मुझे तनिक भी संकोच नहीं है कि *गीतांजलि* के अधिकांश अनुवाद शब्दानुवाद और अधिक से अधिक छायानुवाद हैं। अनुवादकों को यह भी लगता रहा है कि मूल *गीतांजलि* अपनी अर्थवान संश्लिष्टता, संक्षिप्तता, व्यंजना, सरलता, गेयता और प्रभावान्विति में एक अद्वितीय सर्जना है। पिछले सौ वर्षों में इसकी व्याप्ति, स्वीकार्यता और मान-गौरव में निरंतर वृद्धि होती चली गई है।

चूँकि बांग्ला और हिंदी भाषा की शब्द-संपदा संस्कृत के नाते एक जैसी ही है, इसलिए काव्य पाठ में मूल बांग्ला शब्दों को यथावत् रख देना अधिक सुविधाजनक है। भाव के स्तर पर दूसरे, मूल के निकटतम बने रहना अधिक सुरक्षित युक्ति भी है। लेकिन *गीतांजलि* में प्रयुक्त संस्कृत शब्द-संसार यथा – 'पूर्ण', 'आलोक', 'संचित', 'बहुवासना', 'वंचित', 'निष्ठुर', 'पुरातन', 'सांत्वना', 'निस्पंदित', 'निरलस', 'द्युलोक', 'प्लावित', 'स्निग्ध', 'शुभ्र', 'उज्ज्वल', 'आश्वास', 'निकष', 'ऊर्ध्व-शिरे', 'विपुल-भविष्यते', 'पुण्य आलोक-सम', 'वाक्य-राशि', 'आम्र-मुकुल-सौगंध्ये', 'गंधविधुर समीरणे', 'शयने-स्वपने' जैसे पदबंध से समृद्ध ये गान 'रवींद्र संगीत' (निर्धारित एवं स्वीकृत स्वर लिपि) में अपनी गेयता के नाते कर्णप्रिय हैं लेकिन हिंदी पाठ में ये बोझिल, कृत्रिम और अरुचिकर प्रतीत होते हैं। 'निविड़', 'वृक्ष', 'ज्योत्स्ना', 'व्यवधान', 'अजस्र', 'आवर्जना', 'मिथ्या',

'नीरव', 'चूर्ण', 'निखिल', 'वृष्टि' आदि तत्सम शब्द *गीतांजलि* में बहुधा व्यवहृत हैं।

साथ ही, 'बान', 'डांगा', 'पुठ', 'फाँक', 'हिया', 'झाँटा', 'मुठा', 'डाला', 'खेद' जैसे देशज और स्थानीय शब्द भी *गीतांजलि* में यथास्थान प्रयुक्त हैं। अनुवादकों को इसलिए निस्संदेह ऐसी युक्ति अपनानी पड़ेगी, जिससे एक ओर कविता का मर्म अधिकाधिक सुरक्षित रहे और दूसरे वह आज के पाठक की संवेदना को भी स्पर्श कर सके। पिछले सौ वर्षों में न केवल बांग्ला भाषा के बल्कि हिंदी भाषा के शब्द संसार और इसकी प्रयोग-गति में अंतर आया है बल्कि पाठक वर्ग की मानसिकता और ग्रहीता क्षमता में भी गुणात्मक परिवर्तन आया है।

यहाँ इस बात का उल्लेख आवश्यक है कि *गीतांजलि* के आरंभिक 20 गान कवि लिखित *'शारदोत्सव'* (1908) और *'गान'* (1909) में मुद्रित हो चुके थे। कवि ने स्वयं बताया है कि फुरसत की घड़ी में सिलाईदह के एक निर्जन कक्ष में बैठकर वे अंग्रेजी में *गीतांजलि* के कुछेक गानों का अनुवाद करने लगे। कारण यह था कि चित्त की उद्विग्नता के कारण नींद तो आती नहीं थी इसलिए उसे शांत रखने के लिए इस अनावश्यक कार्य को हाथ में लिया। "...मैंने किसी तरह की बहादुरी जताने के लिए उसे आरंभ नहीं किया था। किसी दिन भाव की बयार के चलते मन में रस का उत्सव जाग उठा था – उसे ही एक दूसरी भाषा के अंदर से मन में उद्‌भाषित करने की आकांक्षा जगी थी और इस तरह एक लघु पुस्तिका भर गई।"

अंग्रेजी में पुनर्सृजित *गीतांजलि* की भावयात्रा तो बहुत ही रोचक है। रवींद्रनाथ ने अपनी पूर्वलिखित कविताओं के विभिन्न संग्रहों से ही, एक चयन तैयार किया था, जिसमें कुल एक सौ तीस कविताओं का अनुवाद – कहना चाहिए पुनर्सृजन अंग्रेजी भाषा में किया था।[2] यह उनकी मूल पद्यपरक कविताओं की अंग्रेजी गद्य में भाव-प्रस्तुति थी। एक विदेशी भाषा में, विषम समाज के (प्रबुद्ध) पाठकों के लिए प्रस्तुत यह कृति इतनी चर्चित होगी और नोबेल पुरस्कार से गौरवान्वित होगी, इसकी संभावना भी तब कल्पना से परे थी।

गीतांजलि के अंग्रेजी अनुवाद में कवि ने *'चैताली', 'कल्पना', 'खेया', 'शिशु', 'नैवेद्य', 'स्मरण', 'उत्सर्ग'* के अलावा *'गीतिमाल्य', 'गीत वितान'* और *'चयनिका'* से भी कुछेक कविताओं को अनूदित कर इसमें स्थान दिया था। यानी *गीतांजलि* (बांग्ला) में जहाँ 1896 ई. से 1910 ई. तक रचित कविता संग्रहों से गीत या गान संगृहीत थे वहाँ अंग्रेजी *गीतांजलि* (*सांग्स ऑफरिंग्स,* नवंबर 1912 ई. में इंडिया सोसाइटी से प्रकाशित सीमित संस्करण) में 1896 ई. से 1912 तक रचित रचनाओं और संकलनों से।

गद्यानुवाद में रूपांतरित इन गानों के स्वरूप और इससे भी अधिक माध्यम, यानी

अंग्रेजी में प्रस्तुत देखकर यह प्रश्न करना स्वाभाविक ही है कि क्या रवींद्रनाथ द्वारा इन अनुवादों में मूल का स्वर सुरक्षित है। पहला, भाव के स्तर पर और दूसरा भाषा के स्तर पर; तीसरा शैली के स्तर पर और चौथा प्रभाव एवं प्रस्तुति के स्तर पर। इस बात में कोई संदेह नहीं कि एक विषम, विदेशी और अपरिचित पाठक वर्ग को ही नहीं बल्कि आलोचकों को भी एक गुलाम देश के एक अनजाने कवि की कृति इतनी पसंद आई तो निस्संदेह यह एक बहुत बड़ी उपलब्धि थी। अगर इस कृति के अनुवादक रवींद्रनाथ नहीं भी होते (जैसा कि अधिकांश साहित्यिक कृतियों के मामले में होता है) तो भी कितना अंतर पड़ता? यह तो सर्वथा गौण प्रश्न है। रवींद्रनाथ ने अपने इस अनुवाद-कर्म के बारे में विलियम रोथेंस्टाइन को लिखा भी था – "यह ठीक है कि मेरे अनुवाद पूरी तरह से गद्य हैं लेकिन मेरा उद्देश्य समस्त पूर्व प्रयोगों और काव्य रूढ़ियों से अलग, गीत और लय का संस्पर्श देते हुए उन्हें सरल और सहज रखना रहा है।"[3]

कविताओं का अनुवाद समग्रतः संभव नहीं, इस बात को मानने वाले अनुवादविद् और कुछ अनुवादकों द्वारा अपनी कविताओं के अनुवादों (यहाँ तक कि गद्य रचनाओं से भी) से अप्रसन्न रवींद्रनाथ ने कई बार अनुवाद की अपर्याप्तता और उसकी स्वीकार्यता पर समय-समय पर तीखी टिप्पणी की है। अपने मित्र सुप्रसिद्ध, पत्रकार एवं संपादक रामानंद चट्टोपाध्याय (1865-1943) को लिखित पत्र में कवि ने स्वकृत अनुवाद के बारे में लिखा था –

> "मेरी कठिनाई यही है कि मैं अनुवाद नहीं कर पाता, मुझे प्रायः नया बनाकर लिखना पड़ता है। कारण यह है कि अच्छी तरह अनुवाद करते समय खुद को भूले बिना लिखना संभव नहीं। अपने को न भूलने से बात क्या है, यह मैं भूल जाता हूँ, व्याकरण भूल जाता हूँ और शैली भूल जाता हूँ।"[4]

बात जो भी हो, रवींद्रनाथ की रचनाओं ने कालांतर में, देश-विदेश में, अनुवादकों द्वारा भारतीय भाषाओं और विदेशों में पर्याप्त ख्याति दिलवाई और अभी तक यह सिलसिला जारी है। भविष्य में भी रहेगा। लेकिन उन्होंने स्वयं को अनुवादक नहीं, बतौर पुनर्सर्जक ही प्रस्तुत किया। अंग्रेजी पाठकों और समालोचकों ने भी उनकी कृति *गीतांजलि* को उनके द्वारा अनूदित कृति नहीं, बल्कि मौलिक कृति के रूप में ही स्वीकृति प्रदान की। यह उनके भावजगत और उस कवि का सम्मान था जो सभी संकीर्ण सीमाओं – धर्म, संप्रदाय, भाषा-जाति, क्षेत्र और विचार से परे – एक विश्व और एक विश्वमन का आह्वान कर रहा था। इसमें बांग्ला, अंग्रेजी या हिंदी का प्रश्न ही कहाँ था? इसलिए कवि ने लिखा भी था –

> "जो लोग यह कहते हैं कि *गीतांजलि* का अंग्रेजी अनुवाद मैंने स्वयं नहीं

किया, वे ठीक ही कहते हैं। वस्तुतः सर रवींद्रनाथ अंग्रेजी जानता ही नहीं। यदि मुझे किसी अंग्रेजी सभा में वक्ता या सभापति के रूप में बुलाया जाए तो वह मेरे लिए विपद्‌जनक ही है, क्योंकि जो अंग्रेजी *गीतांजलि* लिखता है वह किसी भी प्रकार मेरे साथ वहाँ आने को राजी नहीं होता...यदि मैं वहाँ जाता भी हूँ तो चाणक्य मुनि का स्मरण कर – 'न भाषते' की पंक्ति में बैठा रहता हूँ।"[5]

कवि के परम मित्र, प्रशंसक, अंग्रेजी के श्रेष्ठ कवि और आलोचक वाई बी. येट्स ने *गीतांजलि : सांग आफरिंग्स* की भूमिका (सितंबर 1912) में रवींद्रनाथ की काव्य प्रतिभा और उनकी रचनात्मक भूमिका पर संक्षेप में चर्चा करते हुए, अंत में उनके उस शिशु स्वभाव की चर्चा की है जोकि उनके संत स्वभाव से अलग नहीं जान पड़ता – "Indeed, when he is speaking of children, so much a part of himself this quality seems one is not certain that he is not also speaking of the saints; they build their houses with sand and they play with empty shells. With withered leaves they weave their boats and smilingly float them on the vast deep. Children have their play on the seashore of worlds. They know not how to swim, they know not how to cast nets. Pearl Fishers dive for pearls, merchants sail in their ships, while children gather pebbles and scatter them again. They seek not for hidden treasures, they know not how to cast nets".

हालाँकि उक्त अनूदित गान मूल बांग्ला *गीतांजलि* में नहीं है। यह गान, *'शिशु'* नामक संग्रह से लिया गया है। इसमें जगत पारावर तट पर शिशुओं का मेला लगा है – जहाँ रेत से घर बनाकर, शंख-सीपी जुटाकर और पत्तों की नाव बनाकर वे खेल रहे हैं। वे कौड़ियों को ही अपनी थाती और संपत्ति मानकर आनंद मनाते हैं और फिर उन्हें बिखेर देते हैं। ऐसे बालकों के खेल में स्वयं विराट सागर भी सम्मिलित है। कवि ने उनके आनंद को ही सर्वोपरि माना है – उनके खेल के साधन भले ही तुच्छ हों, उसकी परवाह न कवि को है और न सागर तट पर खेल रहे शिशुओं को।

यह बात सही है कि अपने अंग्रेजी ज्ञान या अंग्रेजी अनुवाद को लेकर रवींद्रनाथ संशयचित्त थे, लेकिन *गीतांजलि* के अंग्रेजी में रूपांतर (अनुसर्जन) को लेकर वे कभी द्विधाग्रस्त नहीं रहे। विलियम रोथेन्स्टाइन के *'सिंस फिफ्टी'* ग्रंथ में उल्लिखित एक पत्र का हवाला यहाँ दिया जा सकता है जिसमें रवींद्रनाथ लिखते हैं – "आपको निश्चय ही याद होगा कि कितने असमंजस और अनिश्चय के साथ मैंने *गीतांजलि* की पांडुलिपि आपको सौंपी थी। मेरी अंग्रेजी बड़ी अनोखी है, जिसके लिए यह किसी स्कूली छात्र की डाँट तक खा सकती है।"

लेकिन रवींद्रनाथ ने अच्छी तरह जान-बूझकर ही, बांग्ला *गीतांजलि* के अंग्रेजी अनुवाद

सांग आफरिंग्स में पर्याप्त रचनात्मक स्वतंत्रता लेते हुए इसे 'अनुसर्जन' संज्ञा से अभिहित किया था। उनकी स्पष्ट धारणा थी कि मूल बांग्ला गीतों का समुचित पद्यानुवाद निर्बंध रूप में संभव नहीं। इसलिए अपने गानों (गीतों) का उन्होंने अंग्रेजी में गद्यानुवाद किया। *गीतांजलि* के केंद्रीय भाव और आंतरिक मर्म निवेदन को यथासंभव अक्षुण्ण रखते हुए, अन्य काव्य-संग्रहों से भी कुछ गानों का चयन कर उन्होंने इनका गद्यानुवाद प्रस्तुत किया। वह इस बात को अच्छी तरह जानते थे कि उनके द्वारा अनूदित अंग्रेजी गद्यानुवाद का पाठक अंग्रेजीदां है और उनकी सम्मिलित मानसिकता का स्तर क्या है। इसलिए अनुवाद प्रक्रिया में यथासंभव स्वतंत्रता लेते हुए भी विषम एवं विजातीय भाषा अंग्रेजी में मूल गानों का आंतरिक स्वर मूल के सर्वथा अनुरूप था – भाषा की विशिष्टता एवं आग्रह के कारण गानों का बाह्य भाषिक स्वरूप भले बदल गया हो। भाषिक जटिलता के साथ अलग-अलग भाषा की भाषिक संरचना की बाध्यता या विवशता नहीं होती तो रवींद्रनाथ *गीतांजलि* का अंग्रेजी अनुवाद गद्य में नहीं करते।

ऐसा भी उल्लेख मिलता है कि बांग्ला *गीतांजलि* के आविर्भाव को सामयिक साहित्य मंडली ने पर्याप्त उच्छ्वसित स्वर से नहीं सराहा था। बल्कि कुछेक कविताएँ विशिष्ट समालोचकों के द्वारा कटूक्ति का शिकार भी हुईं। *गीतांजलि* को अभूतपूर्व सराहना तब मिली जब अंग्रेजी गीतांजलि : *सांग आफरिंग्स* प्रकाशित हुई तथा यूरोप, अमेरिका और पश्चिमी देशों द्वारा समादृत हुई।[6] 'टाइम्स', 'नेशन', गार्डियन' आदि विशिष्ट पत्रों द्वारा उक्त कृति की सराहना के साथ उसकी समीक्षा भी प्रकाशित हुई थी।

अपनी रचना के प्रति आत्मविश्वास के बावजूद, जब *सांग आफरिंग्स* ने विश्वविजय किया तब स्वयं कवि का मनोबल यशस्वी हुआ। यह 'भाव की बयार के साथ मन के अंदर रस का उत्सव था' – (भावेर हाउवाय मनेर मध्ये रसेर उत्सव)। यह उनकी रचना का 'प्रवासी जन्मांतर' (Foreign Incarnation) था।

13 मार्च 1912 को अर्बाना (अमरीका) से अजित कुमार चक्रवर्ती को रवींद्रनाथ ने अपने पत्र में लिखा था – "इस देश में मेरी रचना (अंग्रेजी में अनूदित) को कोई भी अनुवाद समझकर स्वीकार नहीं करना चाहता। .....अंग्रेजी का अपना सौंदर्य और गौरव है। इस दिशा में अधिकार प्राप्त कर वह नया जन्म ग्रहण कर पाएगी।"

कहा तो यहाँ तक गया कि मैकमिलन कंपनी (रवींद्रनाथ की रचनाओं में प्रारंभिक प्रकाशक) ने कवि की विश्वव्यापी प्रसिद्धि से उत्साहित होकर उनकी अन्यान्य रचनाओं को अनूदित कृति बताते हुए अनुवादकों के नामोल्लेख के बिना सीधे रवींद्रनाथ के नाम से मुद्रित/प्रकाशित किया।

लेकिन इस आनंद-ज्वार और अनुवाद-ज्वर को झटका तब लगा जब जलियाँवाला

बाग हत्याकांड के बाद, 30 मई 1919 को रवींद्रनाथ ने अपनी नाइटहुड की उपाधि ब्रिटिश सरकार को रोषपूर्वक लौटा दी। इसके बाद पश्चिमी पाठकों और कुछ भारत विरोधी आलोचकों ने यह चक्रांत रचा कि *गीतांजलि-सांग आफरिंग्स* रवींद्रनाथ का स्वकृत अनुवाद नहीं बल्कि यह कवि वाई.बी. येट्स कृत अनुवाद है। सर वैलेंटाइन शिरॉल ने भी इस अफवाह को हवा दी और भारत में भी इसकी अनुगूँज सुनाई पड़ने लगी। इस अन्यथा अपवाद से रवींद्रनाथ के संवेदनशील हृदय को गहरा आघात लगा।

गीतांजलि के अंग्रेजी अनुवाद (सांग आफरिंग्स) की संस्तुति में इतना कुछ कहा गया कि वह इसके इतिहास पर भी दुर्वह बोझ है। साथ ही, इसके अंग्रेजी गद्यांतर पर भी नकारात्मक टिप्पणी की गई जिससे आहत होकर विलियम रोथेन्स्टाइन को लिखना पड़ा था –

> "भारत में यह बताया भी गया कि *गीतांजलि* की सफलता का श्रेय येट्स द्वारा टैगोर की अंग्रेजी के पुनरुद्धार के कारण है – इस बात को मैं जानता था। लेकिन यह झूठ है, जिसे आसानी से साबित किया जा सकता है। अंग्रेजी और बांग्ला *गीतांजलि* की मूल प्रतियाँ मेरे पास हैं। येट्स ने यहाँ-वहाँ थोड़े परिवर्तन अवश्य सुझाए थे लेकिन रवींद्रनाथ द्वारा अनूदित रचनाओं का मूल स्वरूप ही मुद्रित हुआ।"[7]

लेकिन रवींद्रनाथ भी चुप बैठे नहीं रहे और उन्होंने इस अफवाह का कड़े शब्दों में प्रतिवाद किया और लिखा कि उन्होंने अंग्रेजी में अपनी इस रचना को इसलिए अंतरित किया ताकि पश्चिमी समाज अपनी भाषा में प्राच्य का स्वर या संदेश सुन सके। वे यहीं नहीं रुके बल्कि उन्होंने अपने प्रिय मित्र और लेखक एडवर्ड थॉम्पसन (*रवींद्रनाथ टैगोर : पोयट एंड ड्रामाटिस्ट* के लेखक)[8] के प्रति भी अपना रोष प्रकट किया। दरअसल, नोबेल पुरस्कार प्राप्त करने के बाद, अपनी कुछ चुनी हुई रचनाओं और कुछ फुटकर सामग्री का अंग्रेजी अनुवाद रवींद्रनाथ ने उन्हें संशोधन हेतु सौंपा था। थॉम्पसन साहब ने अत्युत्साह में, रातोंरात उसमें पेंसिल से तीन सौ के आसपास संशोधन सुझाए थे।[9] इस बात से रवींद्रनाथ और भी क्षुब्ध हो उठे थे और उन्होंने उनकी हठधर्मिता के बारे में अपने मित्र और निजी सचिव प्रशांतचंद्र महलानवीस को, 12 अक्टूबर 1921 को अपने पत्र में लिखा था –

> "अपने अंग्रेजी अनुवाद के बारे में सोच-विचार करने के बाद, मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि थॉम्पसन या किसी और की बात से विचलित होने की कोई वजह नहीं है। मेरी रचनाएँ केवल अंग्रेजों के लिए नहीं हैं – समग्र पश्चिमी महादेश के लिए हैं। उन्होंने रचनाओं के नाते ही, मुझे ग्रहण किया है। और ये सब सिर्फ अनुवाद ही नहीं – नई रचनाएँ भी हैं।"

रवींद्रनाथ ने अनुवाद के इस जन्मांतरण को अपनी सृजनधर्मिता से जोड़कर ही ग्रहण किया था। नाभि-नाल की अटूट संबद्धता के बावजूद, स्वतंत्र कलात्मक निर्मिति के प्रति वे सदैव सचेष्ट रहते थे और यही तैयारी उन्हें विपुल संख्या में लेखन के बावजूद दोहराव से बचाती थी। पश्चिमी पाठकों को संबोधित कर उक्त रचनाओं के बारे में उनका स्पष्ट विचार था – 'प्राणगंगा की पूर्वमुखी धारा को पश्चिमी प्राणमुखी जमुना के प्रवाह की ओर उन्मुख करना। पश्चिम के धनलोलुप, लोभग्रस्त और यंत्रवत् जीवन के निकट प्राच्य की कल्याणकारी, करुणापूर्ण और उदात्त दृष्टि पहुँचाना।'

रवींद्रनाथ इसी प्रशांत सदाशयता के साथ, संशयमुक्त होकर अपनी रचनाओं को अंग्रेजी में भाषांतरित कर पहुँचाते रहे और निकट कालांतर में उन्हें संपूर्ण विश्व के पाठकों की स्वीकृति मिली।

❑

संदर्भ

1. *रवींद्रनाथ* (विनिबंध), साहित्य अकादेमी, पृ. 43
2. हालाँकि अंग्रेजी *गीतांजलि* को *सांग आफरिंग्स* के ठीक नीचे एक वाक्य यह भी जोड़ा गया था – "मूल बांग्ला के रचयिता द्वारा गद्य में अनूदित संग्रह – 'Collection of prose translations made by the author from the original Bengali'.
3. My translations are frankly prose, my aim is to make them simple with just a suggestion of rhythm to give them a touch of lyric avoiding all archaisms and oriental conventions". *Imperfect Accounts* (ed.) Mery M. Lago, 1972, p. 195
4. *कालपत्र* (अनुवाद एवं संपादन) रणजीत साहा, 2004, पृ. 62
5. वही, पत्र संख्या 52 (18 अक्टूबर, 1917), पृ. 61
6. "स्वयं कवि द्वारा अंग्रेजी में अनूदित कविताओं का यह लघु संकलन विस्मयपूर्ण है और ऐसा समृद्ध और काव्यात्मक प्रभाव उत्पन्न करता है कि इसे पुरस्कृत करने के प्रस्ताव में कुछ भी असंगत या मूर्खतापूर्ण नहीं है। जहाँ तक इसकी श्रेष्ठता का प्रश्न है, यह निस्संदेह एक श्रेष्ठ कृति है।" नोबेल पुरस्कार समिति की घोषणा का एक अंश, 13 नवंबर 1913
7. *Men and Memories* (1900-1922), William Rothenstien, p.301
8. प्रकाशक : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, लंदन 1923, संशोधित संस्करण 1948
9. इस तथ्य को 'अनुवाद की राजनीति' (Politics of Translation) का उपयुक्त उदाहरण माना जा सकता है।

डॉ. सी. अन्नपूर्णा एवं प्रो. कृष्ण कुमार गोस्वामी

तेलुगु गद्य काव्य 'विश्वंभरा' का हिंदी अनुवाद : एक मूल्यांकन

विश्व में अनेक भाषाओं के साहित्य में अनेक अमूल्य ग्रंथों की रचना हुई है। इनसे हर देश की संस्कृति के दर्शन होते हैं। वास्तव में किसी भी भाषा में या किसी भी विधा में लिखी गई श्रेष्ठ रचना के लिए देश और काल की सीमाएँ बाधा नहीं डालतीं, उसमें सार्वभौमिक तत्व निहित रहते हैं। परंतु मानव मस्तिष्क की विवशताओं के कारण यह सहज संभव नहीं हो पाता। फिर भी, मनुष्य अपनी प्रतिभा शक्ति के बल पर और कुछेक भाषाओं के ज्ञान से विभिन्न भाषाओं में रचित अमूल्य साहित्य से लाभान्वित होता है। इस साहित्य से मनुष्य में जहाँ विभिन्न देशों के समाज, संस्कृति, परंपरा और जन-जीवन के प्रति जिज्ञासा उत्पन्न होती है, वहाँ उसे रसास्वादन भी होता है। इसके लिए वह कोई-न-कोई साधन ढूँढ़ने का प्रयास करता रहता है। कहा जाता है कि ''आवश्यकता आविष्कार की जननी है।'' बस, मनुष्य की इसी जिज्ञासा के फलस्वरूप विभिन्न भाषाओं के उत्तम साहित्य के अनुवाद की प्रक्रिया का आविर्भाव हुआ

भारत अनेक भाषाओं का विशाल देश है। इसकी अधिकतर भाषाएँ साहित्यिक और सांस्कृतिक दृष्टि से समृद्ध हैं। इसके साथ-साथ इन सभी भाषाओं में भारतीयता के तत्व समान रूप से उपलब्ध हैं। शैली, कथ्य, जीवन-दर्शन, बिंब-विधान, संगीत आदि तत्व मिलकर एक अभिन्न तत्व के रूप में भारतीयता को व्यक्त करते हैं। इनसे में एकता के दर्शन होते हैं। भावात्मक एकता की दृष्टि से अनुवाद की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है और राष्ट्रीय एकता का सूत्र इससे सुदृढ़ बन सकता है।

इसी परिप्रेक्ष्य में तेलुगु भाषा के महत्व को नकारा नहीं जा सकता। इस भाषा में अनुवाद परंपरा प्राचीनकाल से ही चली आ रही है। तेलुगु भाषा के अनेक कवियों,

साहित्यकारों तथा विद्वानों ने संस्कृत, बांग्ला, हिंदी तथा अंग्रेजी भाषाओं की अनेक विधाओं की रचनाओं का तेलुगु में अनुवाद किया और तेलुगु के साहित्य-भंडार को समृद्ध बनाया। इसी क्रम में डॉ. सी. नारायण रेड्डी के कालजयी ग्रंथ-काव्य 'विश्वंभरा' का भी उल्लेख किया जा सकता है। प्रस्तुत आलेख में इसके हिंदी अनुवाद का मूल के आलोक में मूल्यांकन किया जा रहा है।

डॉ. सी. नारायण रेड्डी तेलुगु के लब्ध-प्रतिष्ठित कवि, गीतकार एवं समालोचक हैं। कविता में नव्यता लाना डॉ. रेड्डी के व्यक्तित्व की विशिष्टता है। उनकी रचनाएँ समकालीन समस्याओं से प्रभावित हैं। डॉ. रेड्डी मानवतावादी हैं। वे क्रांतिकारियों के सशस्त्र संग्राम का समर्थन तो नहीं करते, किंतु उनके पीछे जो त्याग और निष्ठा की भावना है, उसके प्रबल समर्थक हैं। डॉ. रेड्डी तेलुगु साहित्य-जननी के वे मानस पुत्र हैं, जिन्होंने तेलुगु साहित्य संवर्धन और विकास में अभूतपूर्व योगदान दिया। श्री रेड्डी के काव्य में विविध प्रवृत्तियों के दर्शन होते हैं, कहीं छायावादी भावधारा से तो कहीं प्रगतिवादी, कहीं वैयक्तिक प्रणय के भाव मिलते हैं, तो कहीं विश्व मानव प्रेम का उदात्त आदर्श-चित्रण है, कहीं प्राचीन ऐतिहासिक एवं परंपरागत दृष्टिकोण है तो कहीं समकालीन सामाजिक गतिविधियों के प्रति आकर्षण तथा राष्ट्रीयता के दर्शन होते हैं, कहीं प्रांतीयता के भाव मिलते हैं तो कहीं अंतर-प्रांतीयता की भावना मिलती है। इसी वैविध्य के कारण डॉ. रेड्डी के साहित्य को विशिष्ट स्थान प्राप्त हुआ है। उनकी 'विश्वंभरा' काव्य-संग्रह मानवतावादी तथा प्रतीक-प्रधान कृति है। तेलुगु साहित्य में यह एक विशिष्ट प्रयोगात्मक गद्य काव्य है।

'विश्वंभरा' काव्य का हिंदी रूपांतरण करने वाले तेलुगु भाषी हिंदी विद्वान् डॉ. भीमसेन 'निर्मल' हैं। डॉ. भीमसेन 'निर्मल' का हिंदी और तेलुगु साहित्य में विशिष्ट स्थान है। तेलुगु भाषा की उत्कृष्ट रचनाओं से हिंदी के पाठकों को परिचित कराना तथा हिंदी की श्रेष्ठ रचनाओं को तेलुगु के पाठकों से रसास्वादन कराना डॉ. निर्मल का ध्येय है।

'विश्वंभरा' : एक परिचय

'विश्वंभरा' तेलुगु वचन-कविता का सर्वश्रेष्ठ समग्र काव्य है। इसमें महाकवि की चेतना, संवेदना, विचार, जीवन-अनुभव, सांस्कृतिक ज्ञान, कलात्मक और समूचे जीवन की कला-साधना तथा जीवन-दृष्टि समाहित है। इसमें देश-विदेश के महापुरुषों की मानवीय धरातल पर रचनात्मक पहचान कराई गई है। इस प्रकार नारायण रेड्डी का यह काव्य तेलुगु साहित्य की एक अनुपम देन है।

'विश्वंभरा' शब्द का अर्थ है—''सारे विश्व को धारण तथा पोषण करने वाली।'' इस काव्य की रंगभूमि विशाल विश्वंभरा है और काव्य का नायक मानव है। विश्व की प्रकृति ही इसकी पार्श्वभूमि है। इसमें सिकंदर, ईसा, अशोक, सुकरात, बुद्ध, लिंकन,

लेनिन, मार्क्स, गांधी जैसे मानवों के विविध रूपों के विकास का चित्रण किया गया है। इसमें मनुष्य के काम, क्रोध, लोभ, आत्म-शोधन तथा प्राकृतिक शक्तियों के कलात्मक चित्रण का नाम ही विश्वंभरा कहा गया है। इस काव्य में मानव मन की स्वच्छंदता, नव्य-अनुभूति प्रात करने की उत्कंठा, कर्म-तत्परता तथा प्रयोगशीलता दिखाना कवि का प्रधान लक्ष्य है। कवि ने इसमें मानव को पतित, निराशा तथा निस्सहाय न दिखाकर विश्व प्रगति के लिए बढ़ने वाले वीर योद्धा के रूप में और सत्य की खोज की निष्ठा से युक्त व्यक्ति के रूप में चित्रित किया है। वास्तव में विश्व मानव व्यवहार का क्रियात्मक रूप धारण करके विश्व श्रेय की साधना करना ही काव्य का परमार्थ है। इसलिए मन को मूल वस्तु के रूप में स्वीकार करके विश्व मानव प्रगति का प्रतीकात्मक चित्रण करने वाले इस काव्य को मानव मन की महत्ता दिखाने वाला काव्य कह सकते हैं।

'विश्वंभरा' की विशिष्टता उसके प्रतीक संयोजन में निहित है। इस काव्य में व्यक्ति-प्रधान नहीं, मनःशक्तियाँ प्रधान हैं। उसमें मानव-प्रवृत्तियों को विश्वजनीन बनाया गया है। उदाहरण के लिए, 'रागात्मा' जर्मन देश के गीतकार बोथेवेन का, 'तपस्या' विश्वामित्र का, 'अहंकार' इंद्र का, 'शंपालता' मेनका का, 'मन' गौतम बुद्ध का, 'धरालोभ' सिकंदर का, 'प्रश्न' सुकरात का, 'क्रांति' ईसा मसीह का, 'चरण' लिंकन और लेनिन का; तथा 'दुबला-पतला विश्वास' गांधी का प्रतीक है। इस प्रकार अनेक प्रसंगों में अनेक प्रतीकों को स्वीकृति इसे मानवता को देश-काल की सीमाओं में परिसीमित न कर विश्वजनीन बनाने वाला काव्य-ग्रंथ बना देती है।

'विश्वंभरा' का अनुवाद

'विश्वंभरा' लय और अनुप्रास पर आधारित नादात्मक गद्य काव्य है। उसमें तेलुगु का अपना अनुप्रास विधान है। आंध्र की संस्कृति को अभिव्यक्त करने वाले कुछ रूढ़ शब्द भी हैं। इसी कारण विश्वंभरा काव्य का अनुवाद कार्य कठिन बन गया है। फिर भी डॉ. निर्मल ने मूल के लय-विन्यास को हिंदी रूपांतर में लाने का सराहनीय प्रयास किया है। मूल रचना के नाद-सौंदर्य में निखार लाना उनके अनुवाद कार्य का लक्ष्य रहा।

अनुवादक डॉ. निर्मल ने मूल रचना की भाषाई विशिष्टता में किसी प्रकार की कमी किए हुए बिना अत्यंत कौशल से 'विश्वंभरा' काव्य का हिंदी अनुवाद प्रस्तुत किया है। वैसे तो हिंदी के संस्कृतजन्य आर्य भाषा होने के कारण संस्कृत शब्दावली की छटा इसमें सहज आ जाती है। परंतु तेलुगु की तरह दीर्घ संस्कृत समासों का प्रयोग करने की प्रथा हिंदी में नहीं है। अतः अनुवादक को कहीं-कहीं उन समस्त पदों का विग्रह करना पड़ा है। अनुवादक ने आवश्यकता के अनुसार सामान्य बोलचाल की भाषा का प्रयोग किया है। वैसे, इसके बावजूद मूल रचना की भाषा की तरह हिंदी रूपांतर की

भाषा में उतनी प्रभावशीलता और प्रांजलता नहीं आ पाई है।

शब्द-विधान के स्तर पर मूल्यांकन : 'विश्वंभरा' के रचयिता डॉ. रेड्डी ने बड़ी तत्परता से इस काव्य के शब्द-विधान को आयोजित किया है। अनुवादक ने भी इसी परंपरा का निर्वाह करने का प्रयास किया है। अनुवादक ने भी प्रसंगानुकूल और आवश्यकता के अनुसार तत्सम, तद्भव, देशज और विदेशी शब्दों का प्रयोग किया है। मूल 'विश्वंभरा' तथा अनूदित कृति में प्रयुक्त तत्सम शब्दों की ओर ध्यान दें तो पता चलता है कि कुछ तत्सम शब्द दोनों भाषाओं में समान हैं, अनुवादक ने उन शब्दों को ज्यों-का-त्यों रख दिया है। इसके अलावा, अनुवादक ने कहीं-कहीं मूल कृति के कुछ तत्सम शब्दों में आवश्यकतानुसार परिवर्तन भी किया है। उदाहरण के लिए, जैसे : मुख का 'मुखड़ा', स्पर्श का 'परस' आदि।

मूल कृति के तत्सम शब्दों का सुविधानुसार हिंदी की शब्द-रचना प्रक्रिया के अनुकूल रखा गया है। जैसे :

पाश्विक क्रीड़	–	पाश्विक क्रीड़ा
हनन तृष्ण	–	हनन तृष्णा
आत्म शोधन	–	आत्मशोध
विक्रांतिनेत	–	क्रांति नेता

इसी प्रकार मूल कृति के कुछ तद्भव शब्दों के बदले अनुवाद में तत्सम शब्दों का प्रयोग किया गया है। जैसे :

पुन्नम	–	पूर्णिमा
पुडमि	–	पृथ्वी

अनुवादक ने 'विश्वंभरा' में प्रयुक्त तेलुगु के तद्भव शब्दों का हिंदी में तद्भव रूपों में रूपांतर करने का प्रयास किया है। जैसे :

मट्टि	–	माटी
नागुलु	–	नागिनियाँ
सूर्यडु	–	सूरज

तेलुगु के व्यावहारिक रूप में लिखे जाने के कारण इस काव्य में तेलुगु के देशज शब्दों की संख्या अत्यधिक है। वास्तव में ये देशज शब्द ही इस काव्य के मूल भाव को प्रकट करते हैं। हिंदी रूपांतर में भी देशज शब्दों का भावोत्तेजक प्रयोग स्थान-स्थान पर किया गया है। जैसे :

इसुक	–	रेत
वडदेब्ब	–	लू

मूल कृति में कवि ने आवश्यकतानुसार कहीं-कहीं विदेशी शब्दों का भी प्रयोग किया है। वैसे इनकी संख्या बहुत कम है। मूल की भाँति हिंदी रूपांतर में भी लगभग उन्हीं शब्दों का प्रयोग किया गया है। जैसे :

पंजा	–	पंजा
तंबूरा	–	तंबूरा

लेकिन मूल कृति के कुछ शब्दों के लिए अनुवादक ने हिंदी रूपांतर में आवश्यकतानुसार विदेशी अर्थात् अरबी-फारसी शब्दों का प्रयोग किया है। जैसे :

धूलि	–	गर्द
माय	–	जादू

इस प्रकार अनुवादक ने मूल भावों को हिंदी में उपयुक्त अभिव्यक्ति देने के लिए तत्सम, तद्भव, देशज और विदेशी शब्दों का प्रसंगानुकूल प्रयोग किया है। लेकिन कहीं-कहीं उन्होंने तेलुगु शब्दों को ज्यों-का-त्यों रखा है, जो वास्तव में हिंदी की प्रकृति के अनुकूल नहीं है और उनका सामान्यतया प्रयोग भी नहीं होता है। जैसे – 'रोदसी', 'षड्ज' और 'क्रेंकार'। इसी प्रकार 'वनुलु' शब्द का अनुवाद अनुवादक ने 'अटवियाँ' किया है, जो हिंदी की प्रकृति के अनुकूल नहीं है।

अनुवादक ने कहीं-कहीं केवल शब्दानुवाद किया है और तुक मिलाने के लिए हिंदी शब्दों को तोड़ा-मरोड़ा भी है। जैसे :

तरंगोद्धति	–	तरंगों की उद्धति
आविष्कृति	–	आविष्कृति

अनुवादक ने लय को दिखाने के लिए उपर्युक्त 'उद्धति', 'आविष्कृति' आदि शब्दों का प्रयोग ज्यों-का-त्यों कर दिया है। इनका प्रचलन हिंदी में इस प्रकार का नहीं है। वास्तव में अनुवादक ने हिंदी रूपांतर में तेलुगु शब्दों के अनुरूप इन शब्दों को रखा है ताकि काव्य में लय विधान बना रहे।

तेलुगु की साहित्यिक ग्रंथिका शैली में लंबे-लंबे समासों का यदा-कदा प्रयोग होता है। उनसे भाषा-शैली परिष्कृत एवं पारिमार्जित होती है। परंतु हिंदी की साहित्यिक शैली में ऐसे लंबे समासों का प्रयोग काफी कम मात्रा में होता है। इसलिए मूल कृति की समास-युक्त भाषा का अनुवादक ने हिंदी की प्रकृति के अनुसार पदों या पदबंधों को लाने का प्रयास किया है। जैसे :

हृदय द्वय समलय	–	हृदय युगल की समलय
इंद्र धर्नुवर्ण वाहिनुलु	–	इंद्र धनु के गाढ़े वर्णों की तरंगिणियाँ

रूप-विधान का संदर्भ : अनुवादक ने मूल कृतिकार की रचना के अनुकूल रूप-विधान

का भी आयोजन किया है। अनूदित कृति में प्रायः उन्हीं शब्दों का प्रयोग किया गया है, जो मूल कृति में मिलते हैं और उन्हीं के अनुरूप उपसर्ग और प्रत्यय भी दिए गए हैं। वास्तव में तेलुगु और हिंदी की उपसर्ग और प्रत्यय प्रक्रिया एकसमान है। जैसे :

अगाध	–	अथाह
अवरोध	–	अवरोध
पाशविक	–	पाशविक
पशुत्वं	–	पशुता

काव्य रचना में वाक्य की रसात्मकता को आवश्यक बताते हुए आचार्य विश्वनाथ ने काव्य की 'रसात्मकं वाक्यं काव्यं' परिभाषा दी। अतएव किसी भी काव्य का अनुशीलन करने के लिए उसकी वाक्य रचना के कौशल और प्रभावोत्पादकता की ओर ध्यान देना पड़ता है।

वाक्य-रचना के निकष पर : मूल कृति में कवि ने आवश्यकता के अनुसार जहाँ-तहाँ सरल, मिश्र और संयुक्त तीनों प्रकार के वाक्यों का भी सार्थक प्रयोग किया है। लेकिन भावों को प्रभावशाली तथा सुस्पष्ट बनाने के लिए सरल वाक्यों का विशेष प्रयोग किया गया है। अनुवादक ने भी हिंदी रूपांतरण में मूल के सरल वाक्यों में लाने का प्रयास किया है। जैसे :

एमिटिदि	–	यह क्या है?
नदीगर्भ लो एडारि	–	इस नदी गर्भ में मरूभूमि
पडुकुन्नदि?	–	लेटी हुई है?

मूल कृति में भाव की तीव्रता की दृष्टि से भाषा में प्रवाह लाने के लिए कवि ने जहाँ-तहाँ मिश्रित वाक्यों का प्रयोग किया है। अनुवादक ने इनका अनुवाद वैसे ही किया है। जैसे :

शासनं उरिमिते	–	शासन गरजे तो
चल्लारदु कांक्ष	–	कामना बुझती नहीं

उसी प्रकार मूल कृति में कवि ने कहीं-कहीं संयुक्त वाक्यों का भी प्रयोग किया। किंतु अनुवादक ने अपनी सुविधा के अनुसार संयुक्त वाक्यों को तोड़कर उनके भावों को सरल या मिश्रित वाक्यों में व्यक्त किया है। फिर भी कहीं-कहीं संयुक्त वाक्यों का ज्यों-का-त्यों अनुवाद भी अनुवादक ने प्रस्तुत किया है। जैसे :

नदुलनु तन लो कलुपुकुन्ना	–	कितनी ही नदियाँ उसमें क्यों न मिल जाएँ।
मधरिम लेन्नेन्नो निंपुकुन्ना	–	कितनी ही मधुरिमाएँ उसमें भर क्यों न जाएँ।
तनकु निलिचिन रूपं मोक्कटे	–	रहता उसका एक ही रूप।

तनकु मिगिलिन रूचि ओक्कटे – रहता उसका एक ही स्वाद।

फिर भी इसके बावजूद, मूल कृति की वाक्य योजना में जो प्रौढ़ता प्रांजलता और परिष्कार के दर्शन होते हैं, अनुवाद में उसी प्रकार का सौंदर्य नहीं आ पाया है। यह वास्तव में अनुवादक की सीमा है।

प्रोक्तिपरक मूल्यांकन : अर्थ विवेचन में प्रोक्ति का विशेष स्थान है। डॉ. रेड्डी के काव्य का प्रोक्तिपरक विवेचन करने से पता चलता है कि उन्होंने वाक्यों के संयोजन से विशेष अर्थ या संदेश को स्थान-स्थान पर प्रकट किया है। अनुवादक ने भी भावों को सुरक्षित रखने के लिए विभिन्न वाक्यों का अर्थात् प्रोक्तिपरक रचना का सुंदर नियोजन किया है। जैसे :

ऋषित्वानि की, पशुत्वानि कि	–	ऋषिता का, पशुता का
संस्कृति की, दुष्कृति की	–	संस्कृति का, दुष्कृति का
स्वच्छंदतकू, निर्बंधतकू	–	स्वच्छंदता का, निर्बंधता का
समार्द्रतकू, रौद्रत कू	–	समार्द्रता का, रौद्रता का
तोलि बीजं मनस्सु	–	पहला बीज है मन
मनसुकु तोडुगु मनिषि	–	मन का आवरण मानव
मनिषिकि उड्डुपु जगति	–	मानव का आच्छादन जगत
इदे विश्वंभरातत्वं	–	यही है विश्वंभरा तत्व
इदे अनंत जीवित सत्यं	–	यही है अनंत जीवन–सत्य

मूल की दस पंक्तियों का आशय अनुवाद में भी दस पंक्तियों में प्रकट किया गया है। मूल कृति तेलुगु में 'निर्बंध' शब्द का अर्थ 'बंधन सहित' होता है, जबकि हिंदी में इसका अर्थ 'बंधन रहित' होता है। अनुवादक ने मूल कृति में प्रयुक्त 'निर्बंधता' का हिंदी रूपांतर में उसी प्रकार प्रयोग किया है, जो वास्तव में एक दोष है।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि अनुवाद करते समय अनुादक को मूल कृति के भावों को सुरक्षित रखने के लिए कहीं-कहीं भाषिक विधान में परिवर्तन करने की आवश्यकता पड़ी है और कहीं उन्हें व्याकरणिक नियमों का उल्लंघन भी करना पड़ा है। हालाँकि इससे कहीं-कहीं अनूदित कृति में दोष आ गए हैं, किंतु भाषिक-विधान की दृष्टि से अनुवाद काफी सफल बन पड़ा है।

भाव-योजना : रेड्डी जी ने विश्वंभरा में सुंदर और वैविध्यपूर्ण भाव-योजना प्रस्तुत की है। इसमें उन्होंने एक ओर अपनी यथार्थ दृष्टि का परिचय दिया, तो दूसरी ओर मानवता के प्रति आस्था अभिव्यक्त की है। इसके अलावा उन्होंने प्राचीन परंपरा के प्रति विश्वास प्रकट किया है।

प्रथम अध्याय में आद्य मिथुन के दिलों में मानवीय भाव तथा आकर्षण उत्पन्न होने पर संयोग दशा में कवि ने प्रकृति में भी संयोग के दृश्य का जो वर्णन किया है, अनुवादक ने उसी के अनुरूप भाव उत्पन्न करने का प्रयास किया है। जैसे :

प्रति तरूवू एदुगुतुन्नदि — तरू तरू बढ़ रहा
पच्चनि श्वासलतो — हरियाली साँसों से

डॉ. रेड्डी ने द्वितीय अध्याय में काव्य तथा अन्य ललित-कलाओं के आविर्भाव के वर्णन में संवेदना के अलग-अलग पहलुओं के आकर्षक रूपों को प्रदर्शित किया है। उसे रागात्मा, नादात्मा, कवितात्मा नामों से अभिव्यक्त किया है। इसी भाव-योजना को सुरक्षित रखने का प्रयास अनुवादक ने किया है, किंतु उनके अनुवाद में काव्यत्व की पूरी झलक नहीं मिलती। जैसे :

बित्तर पोयिंदि पेत्तनं — प्रभुता भ्राँत हो गई
गुत्त सोत्तु चेजारिनट्टु — मानो ठेकेदारी हाथ से निकल गई।

इस अनूदित अंश में भाव-योजना निखर नहीं पाई। मूल की दूसरी पंक्ति में प्रयुक्त 'गुत्त सोत्तु' का अर्थ 'एकाधिकार युक्त संपत्ति' होता है। किंतु अनुवादक ने इसका अनुवाद 'ठेकेदारी' किया है। जैसे :

अगम्यांगा दाचि उंचिन — अगम्य छिपा रखें
अमृत भांडं कुदुरू कदिलिनट्टु — अमृत भाँड की ऐंडुरी ही हिल गई।

मूल की चौथी पंक्ति में 'अमृत भांडं', 'कुदुरू' अर्थात् 'अमृत भांड' का जड़ या मूल अर्थ निकलता है। लेकिन अनुवादक ने मूल के लिए 'ऐंडुरी' शब्द का जो प्रयोग किया है, वह हिंदी में प्रचलित नहीं है। मूल पाठ का अनुप्रास सौंदर्य अनूदित पाठ में नहीं आ पाया। यह वास्तव में अनुवादक की सीमा है। किंतु कहीं-कहीं अनूदित पाठ में अनुप्रास की छटा बहुत सुंदर दिखाई पड़ती है। जैसे :

बुरद निव्विंदि कमलालुगा — कीचड़ हँस पड़ी कमल पर
पुव्वु नव्विंदि भ्रमरालुगा — फूल खिल उठा भ्रमर बन
पुडमि कदिलिंदि चरणालुगा — पृथ्वी चल पड़ी चरण पर

मूल कृति की पंक्तियों में द्वितीय तथा अंतिम शब्दों में 'नव्विंदि', 'कदिलिंदि' तथा 'कमलालुगा', 'भ्रमरालुगा', चरणालुगा' अनुप्रास की शोभा दर्शनीय है। अनूदित पंक्तियों में भी 'कमल बन', 'भ्रमर बन', 'चरण बन' शब्दों में अंत्यानुप्रास की व्यवस्था नजर आती है।

भाव-योजना में शब्द-शक्तियों का भी बड़ा महत्वपूर्ण स्थान होता है। लक्षणा तथा व्यंजना-प्रधान काव्य ही उत्तम काव्य माना जाता है। 'विश्वंभरा' काव्य में इन शब्द-शक्तियों

का सुंदर निर्वाह हुआ है। अनुवादक ने अपने अनुवाद में भी इन शब्द-शक्तियों को सुरक्षित रखने का प्रयास किया है। जैसे :

कललु कने मुनिवेल्ल लोकि	–	स्वप्निल अंगुलियों के पोरों में
अट्टु नव्विंदोक अंदे	–	उधर हँसी एक पायल
इट्टु नव्विंदोक मलिसंदे	–	इधर हँसी एक शाम

शिल्पगत तत्वों के आधार पर मूल्यांकन : 'विश्वंभरा' काव्य का शिल्पगत तत्वों के आधार पर मूल्यांकन करने से उनका भाव-सौंदर्य स्पष्ट हो पाता है और साथ ही यह भी पता चलता है कि 'विश्वंभरा' के हिंदी रूपांतर में इन तत्वों को सहेजने में अनुवादक कितना सफल हो पाया है। विश्वंभरा काव्य में कवि ने छंद की प्राचीन परंपरा ग्रहण न करके मुक्त छंद को अपनाया। किंतु इसमें लय विधान सफल रूप में प्रस्तुत हुआ है। जैसे :

बुरद निव्विंदि कमलालुगा	–	कीचड़ हँस पड़ी कमल पर
पुव्वु नव्विंदि भ्रमरालुगा	–	फूल खिल उठा भ्रमर बन

इन पंक्तियों में यद्यपि अनुवादक ने भी मूल कृति की भाँति लय का विधान करने का प्रयास किया, किंतु उन्हें पूरी तरह से सफलता नहीं मिल पाई है। उदाहरण के लिए :

कुरिसिंदि पच्चिनेत्तुटि बोट्लु	–	बरसाई खून की बूँदें
करूणकु रूपांतरं ला	–	करुणा के रूपांतर-सी
नेत्तिमीदं मुल्लकिरीटं तो	–	तो सिर पर काँटों के ताज से
निलुवेल्ला नाटिन मेकुलतो	–	तन में धँसी कीलों से
चल्लूगा चूसिंदि आ कांति	–	देखा उस कांति ने
सहनमेत्तिन अवतारं ला	–	सहनशीलता के अवतार सी

रचनाकार ने इन पंक्तियों में ईसा मसीह के शूली पर चढ़े करुणाजनक तथा सहनशीलता संपन्न बिंब का सजीव चित्र प्रस्तुत किया है। हालाँकि मूल का आशय अनुवाद में काफी हद तक प्रकट हुआ है। किंतु 'चल्लूगा चूसिंदि आ कांति' पंक्ति का अनुवादक ने 'चल्लूगा' शीतलता से अथवा कृपापूर्व का विश्लेषण छोड़कर सिर्फ 'देखा उस कांति ने' कहकर अनुवाद किया। उस शब्द का सही पर्याय न पा सकना संभवतः इसका कारण हो सकता है।

आधुनिक कवि होने के कारण डॉ. रेड्डी ने अपने विश्वंभरा काव्य की रचना मुक्त छंद में की है। अनुवादक डॉ. निर्मल ने भी मूल रचना का अनुसरण करते हुए अपना अनुवाद मुक्त छंद में करने का सफल प्रयास किया। मूल और अनुवाद की मुक्त छंद

योजना दर्शनीय है। जैसे :

एन्नेन्नि प्रस्थनालु मनिषिकि — न जाने कितने प्रस्थान मानव के

एन्नेन्नि परिभ्रमणालु मनिषिकि — न जाने कितने परिभ्रमण मानव के

'विश्वंभरा' काव्य भाव और शिल्प की दृष्टि से एक अनुपम कृति है। मूल कृति में लय, बिंब और अलंकार योजना से भावों की सुंदर अभिव्यक्ति हुई है। उसी का अनुसरण करने का प्रयास अनुवादक ने भी किया है, किंतु वे इसमें पूरी तरह से सफल नहीं हो पाए क्योंकि अनुवाद कार्य की अपनी मर्यादा-सीमा होती है।

'विश्वंभरा' काव्य की कोई कुतूहलवर्धक तथा क्रमबद्ध कथावस्तु नहीं है और न ही विशेष पात्रों का चरित्र चित्रण है। सिद्धहस्त कवि डॉ. रेड्डी ने इसे अत्यंत आकर्षक तथा रस-संपन्न बनाया है। आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक मानव के सामाजिक, सांस्कृतिक, कलात्मक तथा वैज्ञानिक विकास का इतिहास इतने सरस एवं हृदयग्राही रूप में प्रस्तुत करना अत्यंत प्रतिभा-संपन्न कवि के लिए ही संभव है। शब्दों में आकर्षक अनुप्रास, विचारों की अभिव्यक्ति में समन्वय तथा स्पष्टता इस काव्य की मुख्य विशेषताएँ हैं।

इस प्रकार की किसी भी रचना का एक भाषा से दूसरी भाषा में रूपांतरण करना अत्यंत कठिन कार्य है। उसमें भी काव्यानुवाद और भी जटिल कार्य है। दोनों भाषाओं में समान अधिकार रखने वाले कवि हृदय तथा सरस रचना कुशल अनुवादक ही काव्यानुवाद में सफल हो पाते हैं। इस संदर्भ में डॉ. भीमसेन निर्मल का उल्लेखनीय स्थान है। उन्होंने मूल कृति के मूल भाव को सुरक्षित रखकर लयपूर्ण तथा अनुप्रास-युक्त भाषा शैली एवं सरस भाव व्यंजना में अनुवाद करने का विशेष प्रयास किया है। वास्तव में हर भाषा की अपनी संरचना और विशिष्टता होती है। भाषाओं के समान पर्यायवाची शब्दों के न मिलने और भावों की अभिव्यक्ति में दोनों भाषाओं की पद्धतियों में भिन्नता होने के कारण कहीं-कहीं मूल कृति का सौंदर्य अनूदित कृति में नहीं आ पाता। यह अनुवादक की सीमा है। डॉ. निर्मल के अनुवाद में इसी प्रकार की सीमाएँ दिखाई देती है। वैसे यह कहा जा सकता है कि विश्वंभरा के रचयिता डॉ. रेड्डी ने अपनी भाव-योजना को जिस प्रकार संयोजित किया है, अनुवादक डॉ. निर्मल ने उसी भाव-योजना को हिंदी रूपांतरण में सजाने-सँवारने का सुंदर प्रयास किया है।

वास्तव में विश्वंभरा का यह हिंदी रूपांतरण न केवल तेलुगु साहित्य की विशिष्टता का दिग्दर्शन कराता है बल्कि तुलनात्मक साहित्य के क्षेत्र में, हिंदी साहित्य में भी अपना विशेष स्थान भी रखता है।

❑

स्वाती ठाकुर

'फ़ायर ऑन द माउंटेन' : अनुवाद की दृष्टि से

भाषांतर एक भाषा के शब्दों का दूसरी भाषा के शब्दों में स्थानापन्न न होकर दो सृजनशील, सजग, कल्पनाशील आत्माओं का आत्मीय संवाद है। यही रूपांतर अपनी रंग-रेखाओं और प्राणों के साथ दो भाषाओं का एक पुल मात्र ही नहीं होता, अपनी संपूर्णता में दो संस्कृतियों की आवाजाही ही नहीं होता, वरन् स्वयं में जीवन से परिपूरित एक सृजनात्मक कृति होता है। इसी प्रक्रिया में रूपांतरकार सृजनधर्मा रचनाकार बन जाता है।[1]

भूमंडलीकरण की संकल्पना का विकास आज 'विश्वग्राम' के रूप में हो रहा है, जहाँ एक देश से दूसरे देश की दूरी कम होती जा रही है तथा जहाँ समस्त विश्व सिमटकर एक गाँव बनता जा रहा है। अनेक देशों के बीच लगातार भौगोलिक तथा सांस्कृतिक संबंध बन रहे हैं। विश्व आज भले ही अपने आकार में न सिमटा हो, किंतु 'रूप' और 'संरचनात्मक' ढाँचे को पार करने में लगने वाला समय निश्चय ही सिमट चुका है। भूमंडलीकरण वैश्विक इतिहास की महत्वपूर्ण परिघटना है, जिसमें सूचनाओं का असीम भंडार है। इसी भूमंडलीकरण के माध्यम से साहित्य भी उदारीकृत हुआ है। हर भाषा के रचनाकार को अनुवाद के माध्यम से विश्व की किसी भी प्रमुख भाषा में पढ़ा जा सकता है। लेकिन ऐसे समय में एक सवाल यह भी है कि क्या सभी रचनाएँ अपने मूल से हटकर भी उसी रूप में उत्तेजित कर सकेंगी, जितना कि अपने मूल रूप में करती हैं?

'फायर ऑन द माउंटेन' की रचनाकार अनीता देसाई मूलतः भारतीय रचनाकार हैं। उन्होंने अपनी रचनाओं में अभिव्यक्ति का माध्यम अंग्रेजी भाषा को चुना है। यह साहित्य अकादेमी द्वारा पुरस्कृत रचना है। साहित्य अकादेमी अपने द्वारा पुरस्कृत रचनाओं का अनुवाद भी प्रकाशित कराती है। इसी अनुवाद योजना के अंतर्गत 'फायर ऑन द माउंटेन' का हिंदी अनुवाद जयव्रत कोहली ने 'सुलगता पर्वत' शीर्षक से किया है।

किसी भी अनुवादक के लिए अपने द्वारा किए जा रहे अनुवाद में भाषिक एवं सांस्कृतिक अंतराल को उत्तरोत्तर कम करने की बड़ी चुनौती होती है। इस दृष्टि से देखें तो यह कहा जा सकता है कि अनीता देसाई की रचनाओं का भावबोध भारतीय परिप्रेक्ष्य लिए हुए है, सभी समस्याएँ, सभी पात्र भारतीय प्रभाव के हैं। इस आधार पर देखा जाए तो स्पष्ट होता है कि अनुवादक को अपेक्षाकृत कम समस्याओं का सामना करना पड़ा हो तथा इसी कारण भी अनुवाद में समस्या के तौर पर उभरने वाला भाषिक एवं सांस्कृतिक अंतराल भी यहाँ ज्यादा गहरा नहीं हो पाया है।

उपन्यास 'फायर ऑन द माउंटेन' अपने आरंभ से ही जिस भयावह समस्या को लेकर चलता है, वह व्यक्ति और विशेष तौर पर स्त्री के 'अकेलेपन' की समस्या से संबंधित है। यह 'अकेलापन' समकालीन कथा साहित्य में केंद्रीय समस्या के रूप में देखने को मिलता है। यदि साहित्य को समाज से जोड़कर देखें या पढ़ें, तो हम पाएँगे कि यह कहा जा सकता है कि 'अकेलापन' हमारे समाज की एक बहुत बड़ी समस्या है, जिसने अब धीरे-धीरे एक जानलेवा बीमारी का रूप ले लिया है। अपनी खूबसूरत शुरुआत से हिंसक अंत तक का सफर करता यह उपन्यास 'फायर ऑन द माउंटेन' भारतीय जीवन की अनुभूत प्रतीतियों तथा वृद्धावस्था का खूबसूरती से अविस्मरणीय चित्र उकेरता है। यह अपने प्रमुख चरित्रों नंदा कौल, राका तथा इला दास के विचारों तथा संवादों पर आधारित है। नंदा कौल, राका तथा इला दास तीनों ही अपने-अपने स्तर पर उपेक्षित हैं। तीनों को प्यार तथा स्नेह की जरूरत है। नंदा कौल राका को मुग्ध करने के लिए अतीत के झूठे किस्से सुनाती है, जबकि 'सच्चाई का तेजाब'[2] कुछ और ही था। उसकी कहानियाँ मात्र 'नींद की गोलियाँ'[3] थीं, जो उसे रात में सोने में मदद करती थीं। राका अपने अकेलेपन से निकल कर अपने रोमांचक कार्यों में आश्रय पाती है तथा इला दास अपने आदर्शवाद को पकड़े बर्बर मृत्यु का शिकार होती है।

इलादास की मृत्यु की सूचना पर नंदा कौल को यकीन नहीं होता और एक दुखद आश्चर्य से उसके हाथ से फोन छूट जाता है और तभी राका इन घटनाओं से बेखबर एक और सूचना लेकर आई – "देखो नानी मैंने जंगल को आग लगा दी है और जंगल जल रहा है। उसने देखा, नंदा कौल अपना सर लटकाए स्टूल पर बैठी थी। काले टेलीफोन का चोंगा लटक रहा था।"[4]

इस तरह उपन्यास कई संभावनाओं के साथ समाप्त होता है, जिसे हम एक नई शुरुआत के रूप में भी देख सकते हैं। जैसा कि रूसी लेखक फ्योदोर दोस्तोव्स्की ने 'अपराध और सजा' के अंत में कहा है – वह नई कहानी का आरंभ हो सकता है।[5]

मूल पाठ में उपन्यास की कथा तीन भागों में विभाजित है :

- नंदा कौल एट कैरिग्नानो
- राका कम्स टू कैरिग्नानो
- इला दास लीव्स कैरिग्नानो

मूल पाठ में कथा के विषय तथा क्रम के हिसाब से उक्त नामकरण किया गया है। अनूदित पाठ का इस दृष्टि से विश्लेषण करने पर हम पाते हैं कि अनूदित पाठ का भी उसी समान क्रम में तीन भागों में विभाजन किया गया है, लेकिन यहाँ इनका कोई नामकरण नहीं किया गया है।

लिप्यंतरण अनुवाद की एक प्रविधि है, जिसका यहाँ अनुवादक ने प्रयोग किया है। मूल पाठ में निम्नलिखित एक गीत है :

Darling, I am growing old
Silver threads among the gold... (p. 123)

अनुवादक जयव्रत कोहली ने इन पंक्तियों का काव्यानुवाद करने के स्थान पर उसे लिप्यंतरित कर दिया है – डार्लिंग, आई. एम. ग्रोइंग ओल्ड (पृ. 106)

मूल उपन्यास से तुलना करने पर यह देखा जा सकता है कि अनुवादक ने अनुवाद में कुछ जोड़ने अथवा छोड़ने की स्वतंत्रता ली है। उदाहरण के तौर के लिए, मूल उपन्यास के एक स्थल पर पूरे के पूरे अवतरण But neither Ramlal or Ila Das... Some distain (page 119) का अनुवाद ही नहीं किया गया। कहने का अभिप्राय यह है कि अनूदित पाठ में यह उद्धरण उपलब्ध नहीं है। अनुवाद में इस तरह की कमी खलती है कि अगर अनुवादक ने इस प्रकार की स्वतंत्रता ली है तो उसके मूल में जो आधार रहा है, उसका संकेत अनुवादकीय टिप्पणी के रूप में किया जाना अपेक्षित होता है। इसे अनुवाद की कमी के रूप में देखा जा सकता है।

अनूदित पाठ के विश्लेषण के लिए यहाँ तत्सम, देशज, उर्दू, फारसी आदि की श्रेणी में वर्गीकरण कर सूची दी जा रही है। अनुवादक ने जहाँ 'निर्लिप्त', 'क्षितिज', 'सर्वथा', 'वितरणोत्सव', 'भिक्षुणी', 'दयनीय' और 'व्यवधान' जैसे तत्सम शब्दों का प्रयोग किया है, 'मरोड़ा', 'ड्योढ़ी', 'टोंटी', 'ठोढ़ी', 'तुड़े-पुड़े' और 'चौखट' जैसे देशज शब्दों को भी अनुवाद में स्थान दिया है। इसी तरह उन्होंने 'खानसामा', 'खामोशी', 'तलाश', 'पेशेवर', 'जागीर', 'इत्तला' और 'खासतौर पर' जैसी उर्दू शब्दावली भी प्रयुक्त की है तथा 'मुरब्बा', 'अंगीठी', 'हथपंखे', 'मर्त्तबान' जैस घरेलू उपयोग की चीजों के शब्दों को भी स्थान दिया है।

अनुवादक ने अपने अनुवाद में इसके अलावा सर्जनात्मक शब्दावली को भी अभिव्यक्ति प्रदान की है। उदाहरण के लिए उसने Heartless Blitheness के लिए 'निष्ठुर प्रसन्नता' प्रयुक्त किया है। इसी प्रकार के अन्य उदाहरण हैं : 'मियादी बुखार' (Typhoid), 'आक्रामक

आश्वासन' (Aggressive Assurance), 'जब एक औरत अकेली रहती है' (When a woman lives alone), 'उपाधि वितरणोत्सव' (Convocation), 'अनुमोदन' (Approved), 'दंडवत प्रणाम' (Pray), 'पूज्य भगवान' (Dear God), 'यादगारें' (Memories), 'दोपहर की उस भयानकता' (Horrors of that afternoon), और 'बेजोड़ विकलांगता' (Singular Deformity)।

वैसे यहाँ ध्यान देने की बात यह भी है कि 'Dear God' का अनुवाद निश्चित तौर पर 'प्रिय भगवान' होगा, परंतु अनुवादक ने इसके लिए 'पूज्य भगवान' लिखा है। यह वस्तुतः भारतीय मानसिकता के अनुरूप किया गया अनुवाद है। हमारे यहाँ भगवान के प्रति पश्चिमी मानसिकता के अनुरूप मैत्री का भाव न होकर आराध्य के प्रति असीम श्रद्धा, आस्था तथा भक्ति का भाव होता है। 'पूज्य भगवान' पद निश्चय ही अधिक सार्थक एवं प्रभावी अनुवाद है।

इसी प्रकार, 'when a woman lives alone' का अनुवाद 'जब एक औरत अकेली रहती है' किया गया है। इस अनुवाद में शाब्दिक दृष्टि से कोई त्रुटि नहीं है, लेकिन साहित्यिक दृष्टि से ध्यान दें, तो यह अनुवाद सहज नहीं जान पड़ता। When a Woman lives alone – एक अंग्रेजी किताब का एक अध्याय है, जिसे मूल अंग्रेजी में ही अनूदित पाठ की नायिका भी पढ़ सकती है।

अनुवादक ने Memories का अनुवाद यहाँ 'यादगारें' किया गया है जबकि यादगारें अपने आप में कोई शब्द नहीं है। सही शब्द 'यादगार' है, किंतु उसे भी Memories का सही अनुवाद नहीं कहा जा सकता। Memory का बहुवचन होने के ही कारण संभवतः अनुवादक ने इस शब्द के हिंदी समतुल्य 'यादगार' के आधार पर उसका बहुवचन 'यादगारें' कर दिया है, परंतु यहाँ हिंदी अनुवाद 'स्मृतियाँ' या फिर 'यादें' ही अधिक उपयुक्त होगा।

Horrors of that afternoon में 'भयानकता किसी निश्चित दिन' (That afternoon) की है। इस आधार पर इसका हिंदी पाठ 'उस दिन की भयावहता' होना चाहिए, जबकि अनूदित पाठ 'दोपहर की उस भयानकता' है। इस पाठ से स्पष्ट है कि भयानकता किसी खास तरह की है, दोपहर के खास होने का कोई बोध यहाँ नहीं हो पाता।

Typhoid एक खास शारीरिक बीमारी है, जिसका कोशगत हिंदी रूप 'आंत्र ज्वर' होता है, किंतु इस अनुवाद से प्रवाह भंग की संभावना है। कोहली जी ने इसका अनुवाद कहीं 'मोतीझरा' तो कहीं 'मियादी बुखार' किया है। बेहतर होता कि इसे हू-ब-हू देवनागरी लिपि में लिप्यंतरित कर दिया जाता और नीचे पाद-टिप्पणी में इसकी व्याख्या कर दी जाती।

Singular Deformity का अनुवाद यहाँ 'बेजोड़ विकलांगता' किया गया है। 'बेजोड़ विकलांगता' एक ऐसा पद बन पड़ा है, जिसके दोनों शब्द 'बेजोड़' और 'विकलांगता' बिलकुल भिन्न भाव लिए हुए हैं। 'बेजोड़' जहाँ पूरी तरह सकारात्मक शब्द है, वहीं 'विकलांगता' नकारात्मक। यहाँ 'बेजोड़' पद 'विकलांगता' का विशेषण बन गया है और विकलांगता को गौरवान्वित कर रहा है। ठीक इसी प्रकार, 'निष्ठुर प्रसन्नता' तथा 'आक्रामक आश्वासन' भी ऐसे ही पद बन पड़े हैं।

संस्कृति अपने आप में बेहद गूढ़ अवधारणा है। हर भाषा और हर समाज की अपनी संस्कृति होती है, जो उसे अन्य से पृथक करती है, विशिष्ट बनाती है। उपन्यास के शीर्षक 'फायर ऑन द माउंटेन' में भी एक संस्कृति अंतर्निहित है। लेखिका ने स्वयं भी कहा है कि उनकी रचनाओं के शीर्षक बहुधा मुहावरों के रूप में प्रकट होते हैं। 'फायर ऑन द माउंटेन' भी एक मुहावरा है, जो बाइबिल में प्रयुक्त है। यह शीर्षक काव्यात्मक ध्वनि भी लिए हुए है। इस लिहाज से यदि शीर्षक के अनुवाद पर ध्यान दिया जाए, तो हिंदी में इसका अनुवाद 'सुलगता पर्वत' किया गया है। हिंदी में यह कोई मुहावरा नहीं है और न ही यह अनुवाद मूल का अविकल रूपांतर है। इसमें किसी भी प्रकार की काव्यात्मकता का भी अभाव है। परंतु जब हम कथा की वस्तु पर ध्यान देते हुए शीर्षक पर विचार करते हैं, तो पाते हैं कि उपन्यास के तीनों केंद्रीय पात्रों में अपनी-अपनी स्थितियों को लेकर एक आग है। वे पूरी तरह जल नहीं पातीं, अपितु भीतर ही भीतर सुलगती रहती हैं। इस अर्थ में तीनों ही पर्वत के समान हैं, जो भीतर ही भीतर सुलग रही हैं। इस दृष्टि से विचार करने पर जयव्रत कोहली द्वारा किया गया अनुवाद 'सुलगता पर्वत' सटीक जान पड़ता है।

पहले उल्लेख किया गया है कि अनुवादक ने मूल में लिखी कविता का अनुवाद न करके, लिप्यंतरण किया है। लिप्यंतरण की युक्ति के अलावा उन्होंने अनुवाद का भी सहारा लिया। उदाहरण के लिए मूल के निम्नलिखित गीत को देखिए :

How can ye chart, ye little birds
And I sae eary fu'eary (p. 29)

उपन्यास में प्रयुक्त इस गीत का अनुवाद कोहली जी ने इस प्रकार किया है :

नन्हे पंछी तुम
कैसे गा लेते हो
और मैं चिंताओं के भार से
हूँ कितनी उदास, कितनी निढाल (पृ. 112)

अकेलेपन की भयावह समस्या से जूझ रही इला दास संगीत को जीवन का एक महत्वपूर्ण अवयव मानती है, किंतु जीवन की तमाम शून्यताओं को झेलते हुए वह गा

पाने में खुद को असमर्थ पाती है और नन्हे पंछी के उन्मुक्त गान पर मुग्ध होती हुई उसी से प्रश्न कर बैठती है। पंछी की उन्मुक्तता पर इला दास का यह गीतिमय कथन अनुवाद में अपने भाव को तो बचाए हुए है ही, तमाम सीमाओं के बावजूद अपनी काव्यात्मकता को भी खूबसूरती के साथ सुरक्षित रखे हुए है। इसी प्रकार अनुवादक ने सामान्य प्रतीत होने वाले वाक्यों का कहीं-कहीं काव्यानुवाद भी किया है। उदाहरण के लिए मूल की पंक्ति है : *I don't care – I don't care – I don't care for anything (p. 89)* अंग्रेजी के मूल पाठ से यह एक सामान्य वाक्य प्रतीत होता है। कम-से-कम इसके कविता होने का तो बोध नहीं ही होता है, जबकि अनुवादक ने अनुवाद करते समय इसे निम्नलिखित शब्दों में काव्यात्मक कलेवर प्रदान किया है :

मुझे परवाह नहीं
मुझे परवाह नहीं
मुझे किसी की परवाह नहीं (पृ. 71)

एकांत को अपना स्वभाव बना चुकी राका का उपर्युक्त कथन उसकी एकांतप्रियता तथा उससे जनित उसके आत्म-केंद्रित स्वभाव को भी उद्घाटित करता है। इसके साथ ही,

You are my sunshine
My only sunshine
You make ha pee (p. 77)

का कोहली जी द्वारा किया गया अनुवाद इस प्रकार है :

तुम मेरी धूप हो
केवल मेरी धूप
तुम मुझे खुश रखती हो...। (पृ. 68)

काव्यात्मकता की दृष्टि से तो अनुवाद में भी यह काव्यात्मक ध्वनि पूरी तरह सुरक्षित है। किंतु यदि भाव का गौर से विश्लेषण किया जाए, तो मूल पाठ का भाव पूरी तरह से यहाँ नहीं उभर पाया है। 'My only sunshine' का अनुवाद कोहली जी ने 'केवल मेरी धूप' किया है, जो उपयुक्त नहीं है। 'केवल मेरी धूप' 'Only my sunshine' का हिंदी रूपांतर है, जिसमें एकाधिकार का भाव व्यंजित होता है, जबकि 'My only sunshine' में इकलौती या एकमात्र Sunshine की बात की जा रही है। साथ ही, यदि Sunshine का अनुवाद भी 'धूप' की जगह 'चमक' किया जाता तो बेहतर होता। वैसे उक्त पाठ का अनुवाद कुछ इस प्रकार भी किया सकता है :

तुम हो मेरी चमक
मेरी इकलौती चमक

तुम मुझे खुश रखती हो

इसके अतिरिक्त Discharge तथा Duties जैसे शब्दों का अनुवाद क्रमशः 'मुक्ति' एवं 'धार्मिक कर्त्तव्य' किया गया है, जोकि भारतीय मानसिकता के सर्वथा अनुरूप है।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि जयव्रत कोहली द्वारा किए गए अनुवाद 'सुलगता पर्वत' में कुछ जगह शब्दों, पदों, वाक्यों का सटीक और यथोचित अनुवाद किया गया है। उपन्यास में सांस्कृतिक शब्दावली वाले गीतों के अनुवाद में अनुवादक ने उसकी काव्यात्मकता को पूरी बारीकी के साथ बनाए रखा है। कविता तथा गीतों के अनुवाद की तमाम सीमाएँ बताई गई हैं, परंतु अनुवादक ने इन्हें चुनौती देते हुए मनुष्य की उस अपराजेय जिजीविषा का परिचय दिया है, जिसके लिए 'असंभवता' अजनबी शब्द है। अनुवाद मात्र शब्दों का हू-ब-हू रूपांतरण नहीं होता। उसे उस समाज के परिप्रेक्ष्य में भी रूपांतरित किया जाता है, जिसकी भाषा में अनुवाद किया जा रहा हो। अनुवादक ने इसका ध्यान रखा है, किंतु कुछ स्थलों पर विशुद्धता बनाए रखने के प्रयास में थोड़ी क्लिष्टता तथा कृत्रिमता आ गई है, जिससे बोझिलता तथा दुरूहता भी महसूस होती है। बावजूद इसके, इस अनुवाद ने स्त्रियों की आंतरिक जटिलताओं, जरूरतों को लेकर चलती भारतीय अंग्रेजी साहित्य की एक उत्कृष्ट कृति को हिंदी पाठकों को उपलब्ध तो कराया ही है। इस दृष्टि से इस अनूदित रचना के योगदान की अनदेखी नहीं की जा सकती।

❑

संदर्भ

1. अनुवाद की प्रक्रिया में..., रतन चौहान, नया पथ, जनवरी-जून (संयुक्तांक) 2011, पृष्ठ 351

2-4. सुलगता पर्वत, अनु. जयव्रत कोहली, साहित्य अकादेमी, पृष्ठ 116, पृष्ठ 136

5. Critical Responses to Anita Desai, Vol. II, edited by Shubha Tiwari, p. 272

डॉ. शिबन कृष्ण रैणा

कश्मीर की आदि कवयित्री ललद्यद के कुछ लोकप्रिय पदों का भावानुवाद

कश्मीरी की आदि संत कवयित्री ललद्यद (चौदहवीं शताब्दी) कश्मीरी भाषा-साहित्य की विधात्री मानी जाती हैं। ललेश्वरी, लल, लला, ललारिफा, ललदेवी आदि नामों से सर्वविख्यात इस कवयित्री को कश्मीरी साहित्य में वही स्थान प्राप्त है जो हिंदी में कबीर को है। इनकी कविता का छंद 'वाख' कहलाता है जिसमें कवयित्री ने अनुभवसिक्त ज्ञान के आलोक में आत्मशुद्धता, सदाचार और मानव-बंधुत्व का ऐसा पाठ पढ़ाया जिससे कश्मीरी जनमानस आज तक देदीप्यमान है।

ललद्यद का जन्म पांपोर के निकट सिमपुरा गाँव में एक ब्राह्मण किसान के घर हुआ था। यह गाँव श्रीनगर से लगभग 15 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। तत्कालीन प्रथा के अनुसार ललद्यद का विवाह बाल्यावस्था में ही पांपोर/पद्मपुर ग्राम के एक प्रसिद्ध ब्राह्मण घराने में हुआ। उनके पति का नाम सोनपंडित बताया जाता है। बाल्यकाल से इस आदि कवयित्री का मन सांसारिक बंधनों के प्रति विद्रोह करता रहा जिसकी चरम परिणति बाद में भावप्रवण 'वाक्-साहित्य' के रूप में हुई। कबीर की तरह ललद्यद ने भी 'मसि-कागद' का प्रयोग नहीं किया। ये 'वाख' प्रारंभ में मौखिक परंपरा में ही प्रचलित रहे तथा बाद में इन्हें लिपिबद्ध किया गया। इन वाखों की संख्या दो सौ के लगभग है। सूत्रात्मक शैली में निबद्ध ये 'वाख' कवयित्री की अपूर्व आध्यात्मिक अनुभूतियों की अभिव्यंजना बड़े सुंदर ढंग से करते हैं। योगिनी ललद्यद निःसंदेह संसार की महानतम आध्यात्मिक विभूतियों में से एक हैं जिसने अपने जीवनकाल में ही परमविभु का मार्ग खोज लिया था और ईश्वर के धाम/प्रकाशस्थान में प्रवेश कर लिया था। वह जीवनमुक्त थी तथा उनके लिए जीवन अपनी सार्थकता एवं मृत्यु अपनी भयंकरता खो चुके थे।

उन्होंने ईश्वर से एकनिष्ठ होकर प्रेम किया था और उसे अपने में स्थित पाया था (वुछुम पंडित पननि गरे) — ललद्यद के समकालीन कश्मीर के प्रसिद्ध सूफी-संत शेख नूरूद्दीन वली/नुन्दऋषि ने कवयित्री के बारे में जो उद्गार व्यक्त किए हैं, उनसे बढ़कर उस परम योगिनी के प्रति और क्या भावपूर्ण श्रद्धांजलि हो सकती है :

'उस पद्मपोर/पांपोर की लला ने
दिव्यामृत छक कर पिया,
वह थी हमारी अवतार
प्रभु! वही वरदान मुझे भी देना'

ललद्यद के कुछ लोकप्रिय पदों का भावानुवाद इस प्रकार है :

(1) गगन तू, भूतल भी तू
तू ही दिन पवन और रात,
अर्घ्य, पुष्प, चंदन, पान
सब-कुछ तू, फिर चढ़ाऊँ क्या तात?

(2) प्रभु को ढूँढ़ने घर से निकली मैं
ढूँढ़ते-ढूँढ़ते रात-दिन गए बीत,
तब पंडित/प्रभु को निज घर में ही पाया
बस, मुहूर्त्त साधना का निकल आया मेरे मीत!

(3) चाहे लोग हँसें या हज़ारों बोल कसें
मेरे मन/आत्मा को कभी खेद होगा नहीं,
मैं होऊँ अगर सच्ची भक्तिन शंकर की
आईना मैला कभी धूल से होगा नहीं।

(4) हँसता, छींकता, खाँसता, जम्हाई लेता
नित्य स्नान तीर्थों पर वही है करता,
वर्ष के वर्ष नग्न-निर्वसन वह रहता
वह तुम में है, तुम्हारे पास है रहता।

(5) हम ही थे, होंगे हम ही आगे भी
विगत कालों से चले आ रहे हम ही,
जीना-मरना होगा न समाप्त शिव/जीव का
आना और जाना, धर्म सूर्य का है यही।

(6) अविचारी पढ़ते हैं पोथियों को
ज्यों पिंजरे में तोता रटता राम-राम,
दिखलावे को ये ढोंगी पढ़ते हैं गीता
पढ़ी है मैंने गीता, पढ़ रही हूँ अविराम।

(7) गुरु ने बात एक ही कही
बाहर से तू भीतर क्यों न गई,
बस, बात यह हृदय को छू गई
और मैं निर्वस्त्र घूमने लगी।

(8) पढ़े-लिखे को भूख से मरते देखा
पतझर से जीर्ण-शीर्ण ज्यों इक पत्ता,
मूढ़ द्वारा रसोइए को पिटते देखा
बस, तभी से मन मेरा बाहर निकल पड़ा।

(9) मरेगा कौन और मारेंगे किसे?
मारेगा कौन और मारेंगे किसे?
भई, हर-हर छोड़ जो घर-घर कहे
बस, मरेगा वही और मारेंगे उसे।

(10) धुल गया मैल जब मन-दर्पण से
अपने में ही उसे स्थित पाया,
तब सर्वत्र दिखने लगा वह, और
व्यक्तित्व मेरा शून्य हो गया।

(11) मुखाकृति अति लुभावनी, पर हृदय है कठोर
तत्व की बात कभी उसमें समाई नहीं,
पढ़ते और लिखते होंठ-उँगलियाँ घिसीं तेरी
मगर, मन की दुई कभी दूर हुई नहीं।

(12) तेरी लाज ढकता, शीत से भी रक्षा करता है
स्वयं बेचारा तृण-जल का करता आहार,
फिर दिया किसने उपदेश तुझे रे पंडित?
जो अचेतन पत्थर पर चेतन बकरे को बलि चढ़ाता है।

(13) लोभ, काम, मद, क्रोध को मारा जिसने
इन राहजनों को मार बना जो दास,
ईश्वर सहज में पा लिया उसने, और
बाँध लिया सब में उसने ही श्वास।

(14) जानकर भी मूढ़, देखकर भी अंधा
सुनकर भी गूंगा, बनना एकदम अनजान,
जो जैसा कहे, उसकी सुन लेना
तत्वविध का, बस, यही है अभ्यास।

(15) मार दे काम, क्रोध और लोभ को
नहीं तो मारेंगे ये हत्यारे पलट के,
खाने को दे इन्हें सुविचार-संयम
तब होंगे सब-के-सब असहाय ये।

(16) रे मनुष्य? क्यों बट रहा तू रेत की रस्सी?
इस रस्सी से खिंचेगी न तेरी यह नाव,
नारायण ने लिखी तेरे कर्म में जो रेख है
वह टलेगी कभी नहीं, छोड़ दे तू अहं भाव।

(17) कुछ नींद में भी हैं जागे हुए
कुछ जागे हुए भी सो जाते,
कुछ स्नान करके भी अपवित्र-से
कुछ गृहस्थी होकर भी अगृही होते।

(18) शिव व्याप्त हैं थल-थल में
तू हिंदू औ' मुसलमान में भेद न जान,
प्रबुद्ध है तो पहचान अपने आपको
साहिब से यही है तेरी पहचान।

❑

डॉ. सी. अन्नपूर्णा

अनुवादक डॉ. आई. पांडुरंगराव

तेलुगु साहित्य में अनुवाद विधा के आदि गुरु महाभारत के आंध्रानुवादक कवित्रय नन्नया, तिक्कना तथा एर्राप्रगडा हैं। उन्होंने अपनी विलक्षण बुद्धि एवं प्रखर प्रतिभा से महाभारत के अनुवाद को मौलिक काव्य जैसा प्रस्तुत किया। ऐसे ही विलक्षण बुद्धि, प्रखर प्रतिभा संपन्न, आध्यात्मिक और अनुवादक हैं – डॉ. इलपावुलूरि पांडुरंगराव। वे बहुभाषा कोविद् थे। हाल ही में वे दिवंगत हुए हैं परंतु अपनी रचनाओं द्वारा वे आज भी हमारे बीच में उपस्थित जैसे लगते हैं। साहित्यकार को उसके द्वारा लिखित साहित्य से और अनुवादक को उसके द्वारा किए गए अनुवाद के जरिए पहचाना जाता है। तेलुगु के महान अनुवादकों में डॉ. राव का स्थान अग्रणी है। वे तेलुगु भाषा के जाने-माने साहित्यकार और अनुवादक थे। तेलुगु भाषा के अलावा डॉ. राव हिंदी, संस्कृत, उर्दू, पंजाबी, बांग्ला आदि भारतीय भाषाओं एवं अंग्रेजी भाषा के भी विशेष ज्ञाता थे।

तुलनात्मक अध्ययन में रुचि होने के कारण डॉ. पांडुरंगराव ने तीन भाषाओं में प्रसिद्ध ग्रंथों का अनुवाद किया और तुलनात्मक दृष्टि से महत्वपूर्ण कार्य किया। उन्होंने 1944 से तेलुगु में और 1954 से हिंदी में लेखन कार्य शुरू किया। इनकी करीब 50 प्रतिशत पुस्तकें अंग्रेजी, हिंदी और तेलुगु भाषाओं में उपलब्ध हैं। मौलिक रचनाओं के साथ-साथ अनूदित कृतियाँ भी हैं। डॉ. राव ने तीनों भाषाओं के अनुवाद कार्य में कलम चलाई है।

आधुनिक हिंदी साहित्य के छायावादी महाकवि और भारतीय इतिहास के धरोहर श्री जयशंकर प्रसाद द्वारा रचित महान आधुनिक काव्य है 'कामायनी'। इस काव्य का तेलुगु में डॉ. राव ने तेलुगु अनुवाद प्रस्तुत किया। 'कामायनी' जैसे काव्य का किसी अन्य भाषा में अनुवाद करना अत्यंत श्रमसाध्य है, क्योंकि यह उनकी सृजनात्मक शक्ति के चरम उत्कर्ष की प्रतिकृति है। ऐतिहासिक गवेषणा, सांस्कृतिक चेतना एवं दार्शनिक विचारों का

मर्म, अनन्य अनुभूति, अद्वितीय अभिव्यक्ति एवं गहराइयों तक पहुँचने में सक्षम अनुवादक ही इस चुनौती को स्वीकार करने का साहस कर सकता है। डॉ. पांडुरंगराव ऐसे ही साहसी अनुवादक हैं। उन्होंने मूल हिंदी 'कामायनी' को तेलुगु भाषा की अपनी कृति जैसे सफल अनुवाद प्रस्तुत किया। तेलुगु-भाषी इसे मौलिक काव्य के रूप में पढ़ते हैं। उनके द्वारा इस अनूदित रचना की भाषा मृदु, मधुर और प्रांजल है। इस अनुवाद के द्वारा डॉ. राव को सम्मान-प्रतिष्ठा भी प्राप्त हुई और तेलुगु साहित्यकारों के बीच उनकी विशेष पहचान बनी।

उदाहरण के रूप में कामायनी में उनकी सृजनात्मकता देख सकते हैं :

मूल : *सुख को सीमित कर अपने में केवल दुःख छोड़ोगे*
इतर प्राणियों की पीड़ा लख अपना मुँह मोड़ोगे?

तेलुगु अनुवाद : *स्वार्थ परिमितमयिन सौख्यमु, दुःखमयमुगा परिणमिंचुनु*
आरूलु बाधलु चूचियुनू पेड मुखमु पेट्टुट तगदु नरूलकु।

मूल में श्रद्धा का प्रश्न मनु तक सीमित हो रहा है, लेकिन अनुवादक पांडुरंग राव ने उपर्युक्त पंक्तियों का अनुवाद सारी मानव-जाति के लिए श्रद्धा के हित कथनों के रूप में प्रस्तुत किया, जो लोकमंगलकारी भावना को व्यक्त करता है।

मूल : *कहाँ ले चली हो, अब मुझ को श्रद्धे। मैं थक चला अधिक हूँ।*
साहस छूट गया है मेरा निस्संबल भग्ननाश पथिक हूँ।

तेलुगु अनुवाद : *एचट किटुलु कोनिपोदुवु श्रद्धा! अलसिति नडुगुलु तडबडुचुन्नवि*
ला वोक्किंतयुलेदु साहसमु, धैर्यमुलनु कोलपोयिन पांधुड।।

अपने अनुवाद के द्वारा अनुवादक डॉ. राव तेलुगु के प्रसिद्ध प्राचीन भक्त कवि पोतन्ना के गजेंद्र की दशा (श्रीमद् आंध्र महा भागवतमु, गजेंद्र मोक्षम्) के वर्णन की याद दिलाते हैं।

वस्तुतः अनुवादक डॉ. राव ने भावानुवाद, शब्दानुवाद और अनुसृजन द्वारा अपने अनुवाद कार्य और रचना कार्य को आगे बढ़ाया और विशेष तौर पर एक सफल अनूदित कृति के रूप में प्रस्तुत किया कामायनी को। अस्तु!

डॉ. राव का जन्म 1930 में आंध्र प्रदेश के प्रकाशम् जिले के इलपावुलूरू गाँव में हुआ था और निधन 25 दिसंबर, 2011 को दिल्ली में हुआ। डॉ. राव को राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर के अनेक सम्मान और ख्याति प्राप्त हुई। भारतीय ज्ञानपीठ के निदेशक और सलाहकार के रूप में भी उन्होंने कार्य किया है। निधन के कुछ समय पहले तक वाग्देवी की सेवा में ही समय बिताया। ऐसी महान विभूति तेलुगु और भारतीय साहित्य-लोक में चिरस्मरणीय रहेगी।

❑

मर्से रुदुरेदा
अनु. समीर रावल

गुलाबी आइसक्रीम

'कातालन' स्पेनवासियों की एक भाषा है। लेकिन विडंबना यह है कि स्पेन की प्रमुख भाषा 'स्पेनिश' के समक्ष यह एक छोटी भाषा सिद्ध होती है। इसे अल्पांश लोगों की भाषा तो कहा जा सकता है, किंतु गौण बिलकुल नहीं। कातालन एक नटखट से नाटे व्यक्ति के समान है, जो स्पेनिश भाषा की अनंत और प्रशंसनीय जीवन-शक्ति के सामने अपने अस्तित्व को बनाए रखने के लिए संघर्ष कर रही है। स्पेनिश साहित्यकार इस भाषा में साहित्य रचना करके इस संघर्ष में योद्धा की भूमिका निभा रहे हैं। स्पेनिश लेखिका मर्से रुदुरेदा ऐसी ही कथाकार हैं, जिन्होंने कातालन में साहित्य सृजन किया है। रुदुरेदा की अनेक कहानियों का समीर रावल ने हिंदी में अनुवाद करके इन दोनों भाषाओं के बीच विशिष्ट संबंध स्थापित करने का सार्थक प्रयास किया है। उनके द्वारा अनूदित कहानियाँ यात्रा बुक्स से मर्से रुदुरेदा की 'संपूर्ण कहानियाँ' के रूप में प्रकाशित हैं। प्रस्तुत कहानी उसी संग्रह से ली गई है। समीर रावल को भारतीय अनुवाद के प्रतिष्ठित पुरस्कार 'डॉ. गार्गी गुप्त द्विवागीश पुरस्कार (वर्ष 2011-2012) से सम्मानित किया गया है।

"लो, कौन सी चाहिए, पीली या गुलाबी?"

लड़के ने दो आइसक्रीमें खरीदी थीं और उदास भाव से उनमें से एक चुनने की पेशकश कर रहा था। आइसक्रीम बेचने वाली औरत ने उसके दिए हुए पैसे संभाले और दूसरे ग्राहकों पर ध्यान लगाते हुए चिल्लाई, "बढ़िया आइसक्रीम!"

हमेशा से ऐसा ही होता था कि जब अलग होने का समय करीब आता तब ऐसा लगता था जैसे कि लड़के के ऊपर उदासी की बाल्टी खाली कर दी गई हो जबकि बाकी जितने समय तक वे साथ-साथ रहते उस सारे समय वह अपना मुँह नहीं खोलता था।

पार्क में, प्रेमिका की बगल में पूरी शाम और सूरज के वैभव के साथ, शोरगुल भरे पेड़ों के नीचे वह खुश था। संगीत दल लोहेंग्रिन की प्रारंभिक धुन बजा रहा था, उन्होंने एक-दूसरे का हाथ पकड़े उसे बहुत श्रद्धा से सुना था। झील के नीले स्फटिक पर बतखें तथा गर्दन सीधी किए एक जोड़ी राजहंस ऐसे फिसल रहे थे मानो सेल्युलोयड प्लास्टिक के बने हों। पुरुष, स्त्रियाँ एवं बच्चे कठपुतलियाँ लग रहे थे जो असली इंसानों द्वारा बनाए गए एक अवास्तविक प्रकृति-दृश्य में किसी अद्‌भुत यंत्रावली से निर्देशित चल फिर रहे हों, हँस रहे हों।

जब सूरज ढला तो वे नींबू के पेड़ की उमस भरी छाया में पड़ी एक हरी कुर्सी पर जा बैठे और लड़के ने थोड़ा शर्माते हुए और थोड़ा भावुक होकर उसे सगाई की अंगूठी दी : जिसमें काफी स्पष्ट नजर आने वाले काले धब्बे वाला एक छोटा हीरा लगा था। "कसम खाओ कि तुम इसे कभी भी नहीं उतारोगी।" उसे देखने के लिए लड़की ने अपनी उंगलियाँ फैलाईं, बाँह को थोड़ा आगे किया और हाथ को हिलाया-डुलाया। एक गुप्त अफसोस के साथ उसने कुछ पल पहले वाले अपने हाथ के बारे में सोचा, बिना अंगूठी के, फुर्तीला और स्वतंत्र। उसकी आँखें थोड़ी-बहुत गीली हो गईं।

वे पार्क से बाहर निकल चुके थे और एक-दूसरे की बांहें थामे मेट्रो स्टेशन की ओर जा रहे थे।

"लो, गुलाबी वाली ले लो।"

लड़की ने वह आईसक्रीम ली तब उसे अपनी टांगें कुछ कमजोर होती महसूस हुईं। वे कुछ कदम चले। "गुलाब, गुलाब..." अचानक से लड़की को कंपकंपाहट हुई और लालिमा की एक लहर उसके बालों तक जा पहुँची।

"अरे, आइसक्रीम!" उसने अपनी परेशानी छिपाने के लिए जान-बूझकर आइसक्रीम गिराई।

"और खरीदूँ क्या?"

"नहीं।"

'गुलाब... गुलाब...' जल्दी-जल्दी, ताकि उसे कुछ पता न चल सके... "तुम गुलाब के फूल क्यों खाती हो?" हमारी शादी होगी। मुझे खत जलाने होंगे। सारे, 15 फरवरी वाला भी... अगर उसे संभालकर रख पाती... सूखे गुलाबों के साथ... "तुम गुलाब के फूल खाती हो?" मैं हाथ में गुलाब के फूलों का एक गुच्छा लिए थी, और वह मुझे

चूम रहा था और हम हँस रहे थे, चल रहे थे। उसने मुझे कमर से पकड़ रखा था। टेढ़ी टोपी पहने था, उसकी आँखें चमकीली थीं। मैं गुलाब की एक पत्ती खा रही थी। "अगर हमेशा गुलाब की पत्तियाँ खाओगी तो गुलाब का फूल बन जाओगी।" रात को मुझे सपना आया कि मैं एक पुराने दीवार से सटे तने से जन्मी और फिर धीरे-धीरे रक्त की पत्तियाँ बनकर खुली। उसने झटके से मेरी बाँह पकड़ी, गुलाब के फूल फेंको, उन्हें फेंको। मैंने उसे आधी बंद आँखों से देखा और गुलाब की पत्ती चबाती रही... मेरा प्यार... जब मैं सीढ़ियाँ चढ़ी तब जानती थी कहाँ थी, कहाँ जा रही थी और क्यों। एक वृद्ध आदमी ने दरवाजा खोला और हमें अंदर जाने का रास्ता दिया। उस बेरंग रोशनदान तथा फटेहाल क़ालीन वाले अंधेरे कमरे में कोई गंध नहीं थी। एकदम खस्ताहाल... एवं उदास कमरा था। डरो मत। जब मैंने आँखें खोली तो कुर्सी की पीठ पर कोट देखा और उस पर लाल धारियों वाली हरी टाई... लगता है कि आपको याद नहीं है कि हमें वायलेट फूल भेजने हैं।

दुकान की निदेशक ने मुझे अगले दिन डांटा क्योंकि मैं देरी से पहुँची। वह बैंगनी पत्तियों को एक लोहे की तार में लगा रही थी। कितनी शक्ति से उसने मुझे भींचा था! मेरी बाँह पर नीला निशान हो गया था और मुझे लंबी बाँहों वाला ब्लाउज पहनना पड़ा... पहली चिट्ठी में लिखा था, *जब मैं लौटूँगा तब हम शादी कर लेंगे। क्या अभी भी तुम गुलाब की पत्तियाँ खाती हो? मुझे वे सारे खत व क्रेटोन कपड़े का अस्तर लगा बक्सा जलाना होगा... जलाना होगा... अब यह अंगूठी जो मेरी उंगली में दर्द कर रही है... दो साल से उसने मुझे कुछ नहीं लिखा है... मुझे उसके बारे में कुछ नहीं पता है... शायद विवाह हो गया हो... मर चुका हो... और अगर वह लौटा तो मैं भी लौट आऊँगी...*

इस सुबह जब मैं रो रही थी तो फ्लैट की चौकीदार जो दूध लेकर आई थी, बोली, "जीवन ऐसा ही होता है... और तुम्हें तो बहुत संतुष्ट होना चाहिए कि उसने कोई याद नहीं छोड़ी..."

सत्रह खत, जिनका पागलपन से इंतजार किया, इतना कि इंतजार करते-करते बीमार हो गई...

"तुम गुलाब के फूल क्यों खाती हो?"

"क्या सोच रही हो?" लड़के ने मेट्रो की सीढ़ियाँ उतरते वक्त उससे पूछा।

"मैं? कुछ नहीं।"

❑

मूल मराठी कविता

उत्तम कांबळे

कुणी सांगावं

कुणी सांगावं...
नव्या शतकातला माणूस
संगणकाच्या खांद्यावर
मान ठेऊन
शेवटचा श्वास घेईल
दयाळू संगणक
अंतराळात, मानवाच्या थडग्याशेजारी
शोकसभा घेतील.
दुःखवट्याचा ठराव मांडतील
मनापासून भाषणंही करतील,
पृथ्वीवरच्या पाठीवरील
माणूस नावाची जमात
किती चिवट होती
किती गूढ होती
ती खूप लढवय्यी होती
ती धर्मासाठी लढली!
ती ताजीसाठी लढली!
प्रदेश आणि पंथांसाठीही लढली!
दुःख एवढंच, की
ती माणसासाठी
कधीच लढली नाही!!
समस्त संगणक बांधवांना
आता आमचे नम्र निवेदन
त्यांनी आपल्याला
माणसाकडून मिळालेला मेंदू
दयाळूपणे वापरावा
माणसासाठी लढेल
असा माणूस पुन्हा
जन्माला घालण्याचा
प्रामाणिक प्रयत्न करावा
नामशेष होऊ पाहणाऱ्या
मनुष्यप्राण्याला
हीच खरी श्रद्धांजली!

❑

उत्तम कांबळे
अनु. डॉ. सुधाकर शेंडगे

कौन जाने...

कौन जाने
नए युग का आदमी
कंप्यूटर के कंधे पर
गर्दन रखकर
अंतिम साँस लेगा
और दयालू कंप्यूटर
अवकाश में मानव की कब्र के पास
शोक सभा लेंगे – शोक सभा रखेंगे
और दिल लगाकर लंबे-चौड़े भाषण देंगे
मनुष्य नामक जाति
कितनी जीवट थी
कितनी गूढ़ थी
कितनी वीर-बहादुर थी
वह धर्म की खातिर कितनी लड़ी
वह जाति की खातिर कितनी लड़ी
प्रदेश और पंथ की खातिर कितना लड़ी
दुःख केवल इस बात का है कि –
वह मनुष्य के लिए कभी नहीं लड़ी!
सभी कंप्यूटर भाइयों से
हमारा नम्र निवेदन है कि –
जो मस्तिष्क उन्होंने मनुष्य से पाया है
उसका उपयोग दयावान बनकर करें
मनुष्य की खातिर लड़ने वाला मनुष्य
फिर से पैदा हो, इसलिए
प्रामाणिक प्रयास करें
इस धरती से मिट रहे मानव-प्राणी को
यही होगी सच्ची श्रद्धांजलि...!

❑

मूल मराठी कविता

चंद्रकांत पोतदार

खूप दिवस झालं असं आतून पत्र लिहून

खूप दिवसात झालीच नाही त्याला
पत्राची आठवण तंत्रज्ञानाच्या युगात
खुशालीचा घरच्यांच्या पत्ताच नाही,
मनीऑर्डरचं फारस लक्षातही नाही
इतकी त्याची सततची जगण्याची धडपड
आता तर फोनवरच करतो चौकशी
आईच्या दम्याची
बापाच्या आजाराची,
शाळेतल्या भावाची
आणि शेतातल्या बांधावरच्या
भांडणाचीसुद्धा
आता
त्याच्यासारखी नसते कुणाला
मातीची-घरच्या माणसांची
शिकण्यान्या घोट्या भावाची काळजी
आणि दिवस तर असे
फोन मोबाईल ई-मेलवरच्या प्रवासात
धावत सुटलेले
आजी गेल्यावर नसतो त्याला वेळ
तिच्या मातीला जाण्यासाठी
आणि डोळेही ओलावत नाहीत

बाप झाल्यावर अबोल!
हुंदका तर फुटतच नाही
आईच्या जाण्यानंतरसुद्धा
तरीही शेजारची राधाक्का म्हणते,
आता तूच शहाणा या घरचा
सांभाळ बाबा स्वतःला!
शहरात असलास म्हणून काय झालं?
मातीची नाळ कुठं चुकती का बाबा?
गर्भाचं कर्ज कधी फिटतं का बाबा?
तो मात्र असतो स्वतःच्याच विचारात
परतायला होणारा उशीर
खर्ची पडलेला पैसा
पोराची चुकणारी शाळा
आणि
वाया जाणारी नाटकाची तिकीटं
वेळ-पैसा-नियोजन-नात्यांच्या
त्रांगड्यांतलं त्यांचं जगणं
आणि इकडे
शेजारच्या राधाक्काचीतळमळ
पौरगं एकटं पडल्याची
त्याचं शहराशी एकरुप होणं
आणि
राधाक्काची गोधडीसाठी
नात्यांची जुळवाजुळव.
खूप दिवस झालं असं
आतून पत्र लिहून
फोन-मोबाइल-ई-मेलच्या
जमान्या राहून!

❑

चंद्रकांत पोतदार
अनु. डॉ. सुधाकर शेंडगे

बहुत दिन हुए भीतर से पत्र लिखकर...

बहुत दिनों से उसे नहीं आई
किसी पत्र की याद इस सूचना-संसार के युग में
घर वालों की खुशहाली का पता नहीं
अक्सर नहीं रहती याद मनीऑर्डर की भी
रोजमर्रा की उसकी जीने की आपाधापी
अब तो फोन पर ही होती है पूछताछ
माँ के अस्थमे की
बाप की बीमारी की
स्कूल में पढ़ने वाले भाई की
और खेत में मेड़ पर होने वाले लड़ाई-झगड़ों की भी
नहीं होती उस जैसी फिक्र किसी को
अपने माँ की, मिट्टी की, घरवालों की
स्कूल में पढ़ने वाले छोटे भाई-बहनों की
और उसके दिन तो ऐसे भागम-भागी के
फोन-मोबाइल-ई-मेल पर सवार होकर गुजरने वाले
नहीं होता समय उसके पास अपनी दादी के क्रिया-कर्म के लिए
अपने बाप को गमगीन देखकर भी आँखें नहीं होती नम
नहीं सिसक सकता अब वह अपनी माँ के गुजर जाने के बाद भी
फिर भी पड़ोसी राधाक्का समझाती है उसे –

'अब तू ही तो है समझदार इस घर में
संभाल बबुआ – अपने आपको!
शहर में रहता है तो क्या हुआ
कभी टूट सकता है नाता मिट्टी से
चूक सकता है कभी कर्ज कोख का।'
फिर भी वह खोया दूर किन्हीं विचारों में
अब लौटने में होने वाली देर, लग रहा पैसा
स्कूल में बच्चों की गैरहाजिरी
और बेकार जाने वाले नाटक के टिकट
समय-पैसा-नियोजन-रिलेशन के
झंझट में उलझा उसका सारा जीवन
और इधर पड़ोसी राधाक्का की तिलमिलाहट
शहर में बच्चे के अकेले हो जाने की
और उधर उसका शहर जाकर शहर हो जाना
राधाक्का का रिश्तों की गुदड़ी बुनना जैसे प्यार का बयाना
कई दिन गुजरे – बहुत भीतर से पत्र लिखकर
फोन-मोबाइल-ई-मेल के इस जमाने में रहकर...!

❑